UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186745

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H323/V°2M Accession No. H.259.

Author [illegible]

Title मानव - अधिकार - 1960

This book should be returned on or before the date last marked below.

मानव-अधिकार

—मानव-अधिकारों के संघर्ष की कहानी—

विष्णु प्रभाकर
राजदेव त्रिपाठी

●

१९६०
सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मन्त्री, सस्ता साहित्य मण्डल,
नई दिल्ली

Checked 1965

यूनेस्को के सहयोग से

पहली बार १९६०
मूल्य
एक रुपया

मुद्रक
सत्यपाल धवन,
दी सैंट्रल इलैक्ट्रिक प्रेस,
दिल्ली

प्रकाशकीय

मानव-अधिकार समार की सबसे मूल्यवान वस्तुओं मे से है और हमारा इतिहास बताता है कि उसके सरक्षण के लिए चिरकाल से कितने भारी प्रयत्न हुए है और आज भी हो रहे है। यातायात के साधनो ने दुनिया को बहुत छोटा बना दिया है और मानव की चेतना मानवीय अधिकारो के बारे मे आज बडी ही प्रबुद्ध होगई है।

इस पुस्तक मे, सक्षेप मे, बताया गया है कि इस दिशा म संसार मे कहा-कहा और क्या-क्या प्रयत्न हुए है और किन-किन प्रमुख व्यक्तियो तथा सस्थाओ ने इस यज्ञ मे अपना हविर्भाव अर्पित किया है। राष्ट्रसघ के प्रयासो का भी इसमे उल्लेख हुआ है। पाठक जानते है कि इस अतर-राष्ट्रीय सस्था ने इस क्षेत्र मे बडा महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

मानव-अधिकार का प्रश्न बुनियादी प्रश्नो मे से है और प्रत्येक वर्ग तथा स्थिति के मनुष्य के साथ इसका सबध आता है। हमे विश्वास है कि इस पुस्तक को जो भी पढेगा, उसीको बडी उपयोगी विचार-सामग्री प्राप्त होगी।

मंत्री

विषय-सूची

१. मानव-अधिकार की पृष्ठभूमि ५
२. मानव-अधिकारों की रूपरेखा १४
३. अधिकारों के लिए संघर्ष २३
४. मानव-अधिकारों की घोषणा ४५
५. घोषणा की व्याख्या ६६
६. प्रगति और प्रभाव ७९
७. उपसंहार ९१

मानव-अधिकार

: १ :

मानव-अधिकार की पृष्ठभूमि

आज से कोई ढ़ाई हजार वर्ष पुरानी बात है। भगवान बुद्ध ने तब एक कहानी सुनाई थी: कहते हैं कि पहले धरती नहीं थी। सब कहीं पानी-ही-पानी था। न चांद था, न सूर्य, न नक्षत्र थे, न तारे। बस चारों ओर अंधेरा-ही-अंधेरा। उस अंधेरे में रात की बन आई थी। दिन के दर्शन दुर्लभ थे। जिस तरह दिन-रात जैसी कोई चीज नहीं थी, उसी तरह न पखवारे थे, न महीने, न ऋतुएं थीं, न वर्ष। उस समय स्त्री-पुरुष तो क्या होते, किसी भी प्रकार के जीवन का जन्म नहीं हुआ था।

फिर जिस प्रकार गर्म दूध ठंडा होने पर उसपर मलाई जम जाती है उसी प्रकार पानी की सतह पर धरती फैली। आकाश में चांद और सूरज प्रकट हुए। धीरे-धीरे दिन और रात, पक्ष और मास तथा ऋतु और वर्ष मालूम पड़ने लगे। फिर भद्रलता नामक एक स्वादिष्ट लता हुई। उसके बाद प्राणियों का जन्म हुआ। प्राणी भद्रलता खाने लगे। इस प्रकार बहुत समय बीत गया और तब बिना बोया-जोता चावल हुआ। उस बिना बोये-जोते चावल को प्राणी बहुत दिनों तक खाते रहे। तब कहीं स्त्री-पुरुष की परस्पर आंखें मिलीं और उनमें राग उत्पन्न हुआ। वे घर बनाकर साथ रहने लगे। साथ रहने लगे तो दोनों के सन्तान हुई। इस प्रकार सृष्टि का क्रम चल पड़ा।

लोग खाने के लिए सवेरे-शाम दोनों समय चावल लेने जाते

थे। एक दिन एक आलसी आदमी ने सोचा, "शाम के लिए फिर आना पड़ेगा। क्यों न दोनों समय के लिए अभी लेता चलू ?" बस, वह दोनों समय के लिए चावल ले आया। शाम को उसका एक साथी उसके पास आया और बोला, "चलो, चावल ले आये।" आलसी आदमी ने उत्तर दिया, "मैं तो सबेरे ही दोनों समय के लिए ले आया था। यह सुनकर दूसरा आदमी चला गया और जब वह लौटा तो उसके हाथ में दो दिन के लिए चावल थे। उसको दो दिन का चावल लाते देखकर तीसरा आदमी चार दिन के लिए ले आया। इस प्रकार सग्रह करने की भावना ने जन्म लिया।

कहते हैं, इस पाप के कारण ही चावल के ऊपर भूसी होने लगी और उसका नाम पड़ा धान। यही नहीं, तभी से चावल का अपने-आप उगना भी बन्द होगया। लोगों को खेती करनी पड़ी। खेत बने तो मेंड़ बांधने की बात सूझी और एक दिन लोगों ने पाया कि सबके खेत अलग-अलग होगये हैं।

फिर क्या हुआ। उनमें एक लालची आदमी भी था। एक दिन वह अपने खेत से धान न लाकर दूसरे के खेत से ले आया। किसीने उस ऐसा करते देख लिया। वह पकड़ा गया। ऐसा पहली बार हुआ था, सो लोगों ने उसे समझाया, "देखो, भाई, ऐसा करना पाप है। फिर कभी ऐसा न करना।" उसने सबके सामने वचन दिया, "फिर ऐसा नही करूंगा।" किन्तु लालच क्या आदमी को आसानी से छोड़ता है ? उसने बार-बार चोरी की। लोगों ने उसे पकड़कर मारा-पीटा और इस प्रकार मानव-समाज में चोरी, झूठ और मार-पीट का आरम्भ हो गया।

धीरे-धीरे ये बुराइयां बढती चली गई। उस समय सभी प्राणी स्वतन्त्र थे। कोई किसीको अपनी बात मनवाने के लिए बाध्य नही कर सकता था। लेकिन दोष जब बहुत बढ़ गये तो समाज में परेशानी पैदा होगई। लोग सोचने लगे और एक दिन उन्होंने निश्चय किया कि किसी ऐसे आदमी की खोज की

जाय जो सबको अच्छे कामों में लगाये, बुरे कामों से रोके और सबकी ओर से समाज पर नियंत्रण रखे। ढूंढते-ढूंढते वे एक ऐसे आदमी के पास गये जो उन्हें सबसे अधिक बुद्धिमान, सुन्दर और शक्तिशाली लगा। उन्होंने उससे कहा, "आप बल, विद्या और बुद्धि में हम सबसे श्रेष्ठ हैं। आप हम सबको उचित कार्यों में लगाइये, अनुचित कार्यों से रोकिये, जो निन्दा के योग्य हैं, उनकी निन्दा कीजिये, जो अपराधी हैं उन्हें दण्ड दीजिये। आपको अपने भोजन के लिए चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। हम अपने धान का एक भाग आपके लिए निकाल दिया करेंगे।"

उस तेजस्वी व्यक्ति ने लोगों की बात मान ली। चूंकि वह सर्वसम्मति से चुना गया था, इस कारण उसका नाम हुआ महा-सम्मत। जैसा कि लोगों ने कहा था, सभी खेतों में उत्पन्न धान का एक भाग उसे नियम से मिलने लगा। जैसे-जैसे समाज पर उसका नियंत्रण बढ़ा, खेतों पर भी उसका अधिकार बढ़ा और एक दिन वह उन खेतों का अधिपति बन गया। खेतों अर्थात् क्षेत्रों का अधिकारी बनने के कारण वह 'क्षत्रिय' कहलाया। उचित-अनुचित का भेद बतलाते हुए वह धर्म से सबका रंजन करता था, अतः उसका तीसरा नाम 'राजा' पड़ा।

कहानी इतनी ही है। यह सब ऐसे ही हुआ हो, यह आवश्यक नहीं है। यह भी आवश्यक नहीं कि यह एक निश्चित समय में हुआ हो। राजा का जन्म होने में न जाने कितने युग लगे होंगे, पर यह कहानी मानव और मानव-समाज के निर्माण के साथ-साथ, उसके कर्त्तव्यों और अधिकारों की पृष्ठभूमि पर अच्छा प्रकाश डालती है। किस प्रकार समाज में शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने के लिए मानव को अपने ही समान दूसरे मानव की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी, किस प्रकार अनुशासन के नाम पर उसे नियमों का जूआ अपने कंधों पर रखना पड़ा और दण्ड भोगने के लिए बाध्य होना पड़ा,

किस प्रकार वैयक्तिक स्वार्थ के कारण वह अपने अधिकार खोता गया, इन बातों का बहुत-कुछ आभास इस कहानी से मिल जाता है।

फिर युग बीते। देखते-देखते सर्व-सम्मति से चुना हुआ यह व्यक्ति समाज द्वारा दी गई सत्ता का उपयोग केवल समाज के हित के लिए न करके अपने हित के लिए करने लगा। नेता शासक बन गया। समाजसत्ता राजसत्ता में बदल गई और इस प्रकार राजा एवं प्रजा अथवा शासक एवं शासित, इन दो वर्गों की सृष्टि हुई। राजा अपनी सत्ता और शक्ति का उपयोग जिस प्रकार बाहरी शत्रुओं के विरुद्ध करता था, उसी प्रकार समाज के भीतर प्रजा के विरुद्ध भी करने लगा। राजसत्ता के इस अनुचित उपयोग के प्रति मानव का चिंतित होना स्वाभाविक था। इस चिन्ता के कारण ही मानव-अधिकार का जन्म हुआ।

बाहरी शत्रुओं से रक्षा करने और आन्तरिक उपद्रवों को दबाने के लिए राजा ने धीरे-धीरे कैसे सैन्य-बल का सहारा लिया, यह लम्बी कहानी है। लेकिन एक दिन ऐसा हुआ कि यह सैन्य-बल भी उसकी सहायता करने में असमर्थ हो उठा, विशेषकर समाजगत बुराइयों को दूर करने में वह सफल न हो सका। सृष्टि के आरम्भ से ही मानव एक ऐसी शक्ति में विश्वास रखता आ रहा था जो उसके ज्ञान की सीमा से बाहर थी। उस शक्ति को उसने दैवी-शक्ति कहकर पुकारा। कालान्तर में उसी दैवी-शक्ति से नाना प्रकार के अनुष्ठानों और विधि-विधानों का जन्म हुआ। एक दिन इन सबका सामूहिक नाम हुआ 'धर्म'। प्रारम्भ में धर्म का अर्थ कर्त्तव्य था, पर आगे चलकर वह दूसरे लोकों के कर्त्तव्य तक ही सीमित रह गया। धीरे-धीरे इस धर्म का प्रयोग समाजगत बुराइयों को दूर करने तथा उचित-अनुचित का निरूपण करने के लिए होने लगा। इन सबका आधार था भय।

पहले तो राजा ने सैन्य-बल और धर्म-बल, इन दोनों को

अपने हाथ मे रखा, किन्तु धीरे-धीरे उसका काम बहुत बढ गया। तब उसने धर्म-बल को एक ऐसे वर्ग के हाथ मे सौप दिया जो आगे चलकर पुरोहित-वग कहलाया। अब शासन का कार्य राजा और पुरोहित दोनो के सहयोग से चलने लगा। प्रजा के धार्मिक विश्वास का लाभ उठाते हुए पुरोहित-वर्ग ने राजा को ईश्वर का अश घोषित कर दिया। बाद मे वह ईश्वर का प्रतिनिधि कहलाने लगा और पुरोहित वर्ग ने उसमे दैवी अधिकारो की स्थापना की। इसके बदले म राजा ने आश्वासन दिया कि वह पुरोहित-वर्ग की स्वीकृति के बिना राज्य का कोई भी कार्य नही करगा। इस प्रकार धर्म-सत्ता, राजसत्ता पर हावी होगई। मानव की पराधीनता मे एक और कडी जुड गई। वह राज-शक्ति और धर्म दोनो के अधीन होगया। इस धम के कारण समाज मे नय-नय वर्गो अथवा वर्गो की सृष्टि हुई। प्रारंभिक काल मे आर्य शब्द का अर्थ था 'खेती करनेवाला', लेकिन अब उसका अर्थ हुआ 'कुलीन'। हमारे ही युग मे इस कुलीन (आर्य) शब्द को लेकर हिटलर ने जाति की श्रेष्ठता का नारा लगाया था और नाजीज्म (नात्सीवाद) की स्थापना की थी। उसका जो परिणाम हुआ, वह स्पष्ट है।

जब समाज वर्गो मे बट गया तो उनमे ऊच-नीच का भेद-भाव भी पैदा हुआ। उसी भेद-भाव के आधार पर समाज मे नये नियम बने। प्रारम्भ मे पुरोहित, सिपाही, व्यापारी सभी धरती जोतते थे और पुरोहितो को कोई विशेष अधिकार हासिल नही थे, लेकिन धीरे-धीरे जब उनका सम्पर्क दूसरी जातियो से हुआ, जो रग और इसी प्रकार के दूसरे कारणो मे उनसे अलग थी, तो भद-भाव पैदा होने लगा। यही वर्ण-भेद, जिसका उद्देश्य आर्यो को अनार्यो से अलग करना था, आगे चलकर बहुत जटिल हो गया। दूसरी ओर जैसे-जैसे समाज में नये-नये धन्धे बढने लगे, बटवारा भी आवश्यक होने लगा। इसके अतिरिक्त प्रारम्भिक काल मे जब एक देश या जाति दूसरे देश या जाति पर विजय

प्राप्त करते थे तो पराजित लोगों को बिल्कुल मिटा देते थे। फिर उन्हें दास बना लेने की प्रथा शुरू हुई। यह भी समाज में वर्ग-भेद का एक कारण बना। ऊंचे वर्गों के विशेष अधिकार माने जाने लगे और छोटे वर्ग, विशेषकर शूद्रों को, सामाजिक व्यवस्था मे सबसे नीचे का दर्जा दिया गया। प्रारभ में यह वर्ग-भेद बहुत जटिल नही था, किंतु आगे चलकर जब 'आर्य' शब्द का अर्थ 'कुलीन' होगया तो ऊच-नीच की भावना भी जटिल होगई।

जिस प्रकार भारत में दास या शूद्रों का जन्म हुआ, उसी प्रकार धरती के दूसरे भागों में दासों का व्यापार चलने लगा। यहां भी पहले तो युद्ध-बन्दियों को मार डाला जाता था, लेकिन फिर उन्हें प्राण-दान दिया जाने लगा। प्राण-दान पाकर वे प्रसन्न होते थे और दास बनना बहुत बुरा नहीं लगता था। लेकिन एक दिन दासों का यह व्यापार सारी धरती पर फैल गया। दास प्राप्त करने के लिए डाकुओं के दल इधर-उधर घूमने लगे। धरती पर, समुद्र में, सब कही मनुष्य को दास बनाने और फिर उन्हें गाजर-मूली के भाव बाजार में बेचने की स्पर्द्धा बढ़ने लगी। आज हम दास-प्रथा को मानवता पर सबसे बड़ा कलक मानते हैं। लेकिन एक दिन इसी विश्व के दार्शनिकों ने उसे आवश्यक माना था और एक दिन इसी विश्व के विभिन्न भागों में मानवता के ऐसे पुजारी उत्पन्न हुए, जिन्होंने इस धरती के इस कलंक को दूर करने के लिए प्राणों की बाजी लगा दी।

समाज में वर्गभेद की उत्पत्ति का एक और कारण था और वह था मनुष्य का लोभ। भगवान बुद्ध की कहानी का एक आधार यह लोभ ही है। इस लोभ के कारण सामूहिक स्वार्थ के स्थान पर वैयक्तिक स्वार्थ पैदा हुआ। सामूहिक संपत्ति टुकड़े-टुकड़े होकर वैयक्तिक सपत्ति में बंट गई। राजा-प्रजा समाज के सभी वर्गों में वैयक्तिक संपत्ति बढ़ाने के लिए होड़ होने लगी। यह ठीक है कि यह होड़ पैदा होने में युग लग गये। परंतु इसके कारण

जहां एक ओर उत्पादन मे वृद्धि हुई वहां मुनाफाखोरी भी तेजी से बढ़ने लगी। धर्म-सत्ता भी निर्बल हो आई और धीरे-धीरे अर्थ-सत्ता उसका स्थान लेने लगी। समाज में धनी और निर्धन,

गौतम बुद्ध

शोषक और शोषित जैसे नये वर्गो का आविर्भाव हुआ। समाज और भी बंट गया। समता और सहयोगिता का जो जन्मसिद्ध अधि-

कार था, वह इस प्रकार धीरे-धीरे समाप्ति की ओर बढ़ने लगा।

उपर हमने शूद्र-वर्ण के जन्म की चर्चा की है। कालांतर में उस वर्ण के और भी अनेक भेद होगये। उनमे एक भेद हुआ अछूत। जो वर्ण एक दिन समाज को अपरिमित लाभ पहुंचाने के लिए अस्तित्व में आया था, वह इतना हेय हो उठा कि दूसरे वर्ण उसे छूने में भी पाप समझने लगे। ये अस्पृश्य, अन्त्यज और अछूत एक दिन अपना सब अधिकार खो बैठे और जीवन-निर्वाह के लिए सवर्णों की दया पर निर्भर होने को विवश होगये। ऐसी स्थिति में अधिकार का प्रश्न उठना बहुत ही स्वाभाविक था।

आदिकाल मे स्त्री और पुरुष के अधिकार एक समान थे, बल्कि यह कहना होगा कि स्त्री का अधिकार पुरुष से कुछ अधिक ही था। इस बात के प्रमाण भी मिलते है कि पहले समाज का निर्माण मातृमूलक समाज के रूप में हुआ था। वश मां के नाम से चलना था। योद्धा और शिकारी होते हुए भी आदि-मानव ने स्त्री का प्रभुत्व स्वीकार करने मे कोई आपत्ति नहीं की थी। लेकिन एक दिन ऐसा हुआ कि न केवल समाज ही पितृमूलक हो-गया, अपितु नारी का दर्जा बहुत नीचा माना जाने लगा। यह सब कैसे हुआ, इसके अनेक कारण है। लेकिन प्रारंभिक काल की एक कहानी इस प्रक्रिया के प्रारंभ पर अच्छा प्रकाश डालती है। नारी एक दिन मां बनी और मां बनने के लिए उसे घर में रहना पड़ा। शक्ति में वह कम नहीं थी। उन्हीं दिनों की बात है। एक दिन वह अपनी कदरा में बैठी हुई थी। पुरुष बाहर था। अचानक एक शेर आ गया। नारी ने उसे पहले देखा और जैसाकि पहले भी करती थी उसे मार भगाने के लिए झपटी, तभी पुरुष की दृष्टि भी शेर पर पड़ी। उसने शेर को देखा, नारी को देखा। न जाने क्या हुआ, वह बोल उठा, "नहीं-नहीं, तुम भीतर बैठो। मैं ही इसे ठिकाने लगाये देता हूं।"

वह शेर पर टूट पड़ा। उसके जबड़ों में हाथ डालकर उसे फाड़कर रख दिया। स्त्री ने राहत की सांस ली। आंखों में प्रेम

की ज्योति लिये उसने पुरुष को देखा। क्या कोई विश्वास कर सकता है कि उसी दिन से नारी के घर में रहने की नींव पड़ी ? वह घर की स्वामिनी बनी। वेदों में 'घर की रानी' कह कर उसका सम्मान किया गया है। लेकिन एक दिन यही सम्मान उसकी दासता का कारण बन गया। और जहां दासता है, वहीं तो अधिकार का जन्म होता है।

सच तो यह है पशु-पालन, कृषि और शिल्प का ज्ञान हो जाने के बाद मानव अपने अधिकारों के प्रति अधिक जागरूक होता गया। नारी को 'घर की रानी' बनाकर उसने उसे चूल्हे-चक्की में फंसा दिया और वह बाहर का स्वामी होने के साथ-साथ घर का स्वामी भी बन गया। स्त्री की स्थिति गिरती चली गई और मानवता के इतिहास में एक वह दिन भी आया जब धर्म और पातिव्रत के नाम पर उसे मृत पति के साथ जीवित जल जाने का आदेश दिया गया। एक दिन उदर-पूर्ति के लिए वह अपने शरीर का सौदा करने के लिए भी विवश हुई।

इस प्रकार स्वतन्त्रता और समता का जन्मजात अधिकारी मानव स्वार्थ और लोभ के वश में हो गया। अपनी इस दुर्बलता के फलस्वरूप वह विभिन्न वर्गों, वर्णों और जातियों में बंट गया। परतंत्रता और विषमताओं ने उसे जकड़ लिया। मानव-अधिकार की पृष्ठभूमि में ये विषमताएं ही हैं। इन विषमताओं के कारण जहां एक ओर सभ्यता का विकास हुआ, वहां मानव अपने अधिकारों के प्रति भी सजग हुआ।

: २ :

मानव-अधिकारों की रूपरेखा

समाज का निर्माण होने से पहले मनुष्य दूसरे जीवों की भांति स्वतंत्र था। वह कुछ भी कर सकता था और कहीं भी विचर सकता था। किन्तु जब समाज का निर्माण हुआ तो उसे इस बात का ध्यान रखना पड़ा कि उसकी स्वतन्त्रता के कारण समाज के दूसरे लोगों को कोई असुविधा या हानि तो नहीं होती। इसलिए अपनी ही स्वतन्त्रता को मर्यादित करने के लिए उसने स्वयं कुछ नियम बनाये। उन नियमों का पालन करना उसके लिए आवश्यक होगया। वे नियम जहां उसको उसके कर्तव्यों का बोध कराते थे, वहां समाज में अपने विचार व्यक्त करने और कार्यकलाप करने के लिए उसे कुछ स्वतन्त्रता भी देते थे। कालांतर में इसी स्वतंत्रता का नाम अधिकार हुआ। कह सकते हैं कि कर्तव्य के दूसरे पहलू को ही अधिकार की संज्ञा दी गई। एक कथा आती है कि एक मनुष्य सड़क पर खड़ा होकर घूसा चला रहा था। अचानक दूसरे आनेवाले व्यक्ति के वह घूसा लगा। उस व्यक्ति ने पहले व्यक्ति को डांटा। पहले व्यक्ति ने कहा, "मैं कुछ भी करने को स्वतंत्र हूं।" दूसरे ने कहा, "ठीक है। मैं भी स्वतंत्र हूं।" और उसने अपने हाथ का डंडा चलाना शुरू कर दिया। तब उस पहले व्यक्ति को स्वतंत्रता का अर्थ मालूम हुआ। और इस प्रकार कर्तव्य तथा अधिकार का संबंध स्थापित हुआ।

स्वतंत्रता जन्म-सिद्ध अधिकार है। मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी भी उसके नष्ट हो जाने पर दुखी होते हैं। फारस के एक व्यापारी के पास एक सुंदर तोता था। वह भारत का रहनेवाला था।

एक बार वह यात्री भारत जाने लगा। जाते समय उसने तोते से पूछा "तेरेलिए वहां से क्या लाऊं ?" तोते ने कहा "वहां तुझे तोते दिखाई देंगे। उनसे मेरी दशा का वर्णन करना और मुक्ति के लिए परामर्श मांगना। कहना, यह कहां का न्याय है कि मैं बंदी हूं और तुम हरे-भरे मैदानों में और वृक्षों पर आनंद लूटते हो।" व्यापारी भारत पहुंचा। उसने वन में कुछ तोतों को देखा और अपना घोड़ा रोककर अपने तोते का संदेश उन्हें सुनाया। अचानक एक तोता थरथर कांपने लगा। नीचे गिर पड़ा और उसकी सांस उखड़ गई। व्यापारी ने यह देखा तो वह बहुत पछताया, सोचा, यह हमारे तोते की प्रिया होगी। हाय, मैने बेचारी को मार डाला !

अपना काम समाप्त करके जब वह घर वापस लौटा तो उसके तोते ने कहा, "क्यों मेरी बात पूरी की।" व्यापारी ने उसे वह घटना कह-सुनाई और बहुत पश्चात्ताप करने लगा। तोते ने जैसे ही अपने स्वामी की बात सुनी वह भी थरथराकर गिर पड़ा और ठंडा होगया। यह देखकर वह व्यापारी दुःख और वेदना के मारे अपने कपड़े फाड़ने लगा। करुण स्वर में पुकारने लगा, "मेरे प्यारे तोते, तुझे यह क्या होगया ! हाय-हाय, तू ऐसा था, वैसा था।" और कुछ देर रो-पीटने के बाद उसने तोते को पिंजरे के बाहर फेंक दिया। तोता तुरंत उड़कर एक ऊंची डाल पर जा बैठा। व्यापारी चकित रह गया। तोते ने कहा, "ऐ मेरे स्वामी, इसमें चकित होने की क्या बात है। भारत के तोते ने यही तो कहला भेजा था कि मुझे स्वतंत्र हो जाना चाहिए। और स्वतंत्र होने के लिए मुझे मरने का बहाना करना चाहिए। मैंने वही किया है। अच्छा, अब विदा होता हूं। तुमने बड़ी दया की। मुझे अंधेरी कैद से स्वतंत्र कर दिया।" व्यापारी की आंखें खुल गई। बोला, "तुझपर ईश्वर की कृपा हो। तूने मुझे एक नया मार्ग दिखा दिया।"

कहानी स्पष्ट है। अच्छे-से-अच्छा मेवा-मिष्टान्न, दूध और

फल पाकर भी तोता पिंजरे में सुखी नही रहता। मौका पाकर उड़ ही जाता है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामायण में स्पष्ट लिखा है—'पराधीन सपनेहु सुख नाही।' जब पराधीनता के कारण सपने में भी सुख नहीं मिलता तो वास्तविक दुनिया में कैसे मिल सकता है? और मनुष्य है सुख का खोजी। सुख के लिए उसने समाज का निर्माण किया है। सुख के लिए उसने विज्ञान की अनत खोजें कर डाली। जब तोता तक स्वतंत्रता छिन जाने पर सोने के पिंजरे में रहते हुए, स्वादिष्ट-से-स्वादिष्ट भोजन पाते हुए, सुख का अनुभव नही करता, तो प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ मानव अपनी स्वतत्रता का अपहरण कैसे सह सकता है।

आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
ज्ञानं हि तेषां अधिको विशेषो ज्ञानेन हीना पशुभिस्समानाः॥

आहार, निद्रा, भय और मैथुन ये पशु और मनुष्यो में समान हैं, लेकिन मनुष्य में ज्ञान अधिक है। ज्ञान के बिना मनुष्य पशु के समान है। इससे स्पष्ट है कि ईश्वर ने मनुष्य को सब प्राणियों में श्रेष्ठ माना और उसके मस्तिष्क में ज्ञान जैसी बहुमूल्य वस्तु प्रदान की। उस ज्ञान के कारण ही वह स्वतत्ररूप से अपनी मानसिक और शारीरिक शक्तियो का विकास कर सका। उस ज्ञान के कारण ही उसने स्वतत्रता की रक्षा की। सारे संसार में मनुष्य एक समान ही पैदा होते हैं। समान रूप से ही उनको विकास के लिए साधन मिलते हैं। स्वतंत्रता और समानता मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है।

बरगद का विशाल पेड़ किसको प्यारा नही लगता? उसकी छाया में सैकड़ों पशु-पक्षी सुख पाते हैं। मनुष्य भी सुख का अनुभव करता है। लेकिन क्या कभी किसीने उसकी छाया के नीचे किसी दूसरे पौधे को पनपते देखा है? और वही क्यों, किसी भी बड़े वृक्ष के नीचे छोटा पौधा लगादें तो उस छोटे पौधे की पत्तियां पीली पड़ जाती हैं और उसकी बाढ़ रुक जाती है।

वह नष्ट हो जाता है। ऐसा क्यों होता है ? इसका कारण यह है कि नीचे लगे हुए पौधे की जीवनी-शक्ति, अर्थात् भोजन, पानी, हवा और प्रकाश ऊपरवाला बड़ा पेड़ स्वयं हजम कर जाता है। छोटे पौधे को कुछ नहीं मिलता। इसी प्रकार बड़े मनुष्य की अधीनता में दूसरा मनुष्य अपना अधिकार खो देता है। उसके परिश्रम का फल ऊपरवाला मनुष्य हड़प जाता है और वह छोटे पौधे की तरह एक दिन समाप्त हो जाता है। लेकिन मनुष्य तो पौधा नहीं है। उसके पास ज्ञान-शक्ति है और वह अपनी स्वतंत्रता और अपने अधिकारों का हनन सहन नहीं कर सकता। अपने स्वत्व की रक्षा करना वह अपना सबसे पहला अधिकार मानता है। इसीलिए समाज में यह नियम बना कि किसी भी व्यक्ति या समुदाय को, किसी दूसरे व्यक्ति या समुदाय पर किसी प्रकार का विशेष अधिकार नहीं मिल सकता। प्रत्येक व्यक्ति को इस बात की स्वतंत्रता है कि वह अपना शारीरिक, बौद्धिक एवं मानसिक विकास कर सके।

मनुष्य की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए विचारों की स्वतन्त्रता अनिवार्य है। संसार में आज तक सभ्यता और संस्कृति का जो कुछ भी विकास हुआ है वह विचारों के कारण ही हुआ है। विचारों के भी हाथ-पैर होते हैं। वे चलते-फिरते और अपना काम करते हैं। वास्तव में वे कार्यों के पूर्व-रूप होते हैं, अर्थात् जन्मदाता। इसलिए विचारों का बहुत महत्त्व है। विचारों का सम्बन्ध बुद्धि से है और बुद्धि पर किसी प्रकार का अंकुश नहीं लगाया जा सकता। नाना युगों में सत्ता के मद में चूर मनुष्य ने ऐसा करने का प्रयत्न किया है, परन्तु वह कभी सफल नहीं हो सका। ब्रूनो ने घोषणा की थी—"पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है।" धर्मान्ध व्यक्तियों ने उसे जिन्दा जला दिया। लेकिन ऐसा करके क्या यह घोषणा समाप्त होगई ? नहीं, यह सत्य दुगुनी शक्ति के साथ फैला और एक दिन सारे संसार ने उसे स्वीकार किया। सुकरात विचार-स्वातन्त्र्य का प्रचारक था। वह राह-

चलते व्यक्ति से पूछा करता था— "क्या तुमने सचमुच ही सत्य को जान लिया है ?" यह पूछकर वह मनुष्य के अन्दर विचार की प्रेरणा पैदा करता था। इसी बात के लिए उसे एक दिन विष का प्याला पीना पड़ा। लेकिन क्या कभी सत्य की खोज समाप्त

सुकरात

जिन्होंने विचार-स्वातन्त्र्य के लिए विष का प्याला पिया

हुई ? वास्तव मे जिन विचारो को दबाया जाता है, उनके प्रति लोगो की जिज्ञासा और सहानुभूति और भी बढ जाती है, इसलिए समाज मे यह नियम बना कि विचारो के व्यक्त करने पर रोक लगाना अनुचित है। जान स्टुअर्ट मिल ने कहा है—"हर आदमी को अपनी राय जाहिर करने के लिए स्वाधीनता देना उतने ही महत्त्व की बात है, जितने महत्त्व की बात उसे उस राय को अपने मन मे कायम करने की स्वतन्त्रता देना है। किसी को अपनी राय जाहिर न करने देने से अनुकूल पक्षवालो की हानि तो होती ही है, प्रतिकूल पक्षवालो की भी हानि होती है।"

यह बात ठीक है कि विचार अच्छे भी होते है और बुरे भी। यह भी सही है कि लोक-कल्याण के लिए अच्छे विचारो को

ही बढ़ावा देना चाहिए, बुरे विचारों को नहीं। किन्तु इसके साथ यह भी सही है कि जिस विचार को हम अच्छा समझते हैं, संभव है, दूसरे उसे बुरा समझें। अथवा जिसे हम बुरा समझते हैं, दूसरे उसे अच्छा समझें। हम अपने ही गज से उस विचार को नापते हैं, लेकिन क्या कोई गज अबतक पूर्ण माना जा सका है? अच्छाई-बुराई का यह मापदंड देश-काल की स्थिति के अनुसार बदलता रहता है। कुछ दिन पहले पश्चिम के देश जिन बातों को अच्छा समझते थे, पूर्व के देश उन बातों को पसन्द नहीं करते थे। आज भी यह दृष्टिकोण पूरी तरह बदला नहीं है, इसी प्रकार पिछली पीढ़ी जिन बातों को अच्छा समझती थी, वर्तमान पीढी उनपर हँसती है। यह भी संभव है कि वर्तमान पीढ़ी जिस बात को पसन्द करती है, आनेवाली पीढी उस बात को अच्छा न समझे।

इसके अतिरिक्त अच्छे और बुरे विचारों के संघर्ष से लाभ ही होता है। यदि कोई विचार अच्छा और लाभप्रद है तो लोग उसे अपना लेंगे और इस प्रकार जब उसका बुरे विचार से संघर्ष होगा तो वह बुरा विचार अपने-आप नष्ट हो जायगा। अतः लोकहित के नाम पर भी विचारों की स्वतंत्रता का गला घोंटना ठीक नहीं है। विचारधारा को रोकने की शक्ति शासन के पास तो रहनी ही नहीं चाहिए। ऐसा होने पर उसका दुरुपयोग होने की सम्भावना बहुत अधिक है।

पहले अध्याय में हमने इस बात की चर्चा की है कि आदिम युग में मानव-समाज में धर्म-जैसी कोई वस्तु नहीं थी। कम-से-कम धर्म के जो अर्थ आज माने जाते हैं, वे उस युग में अज्ञात थे। राजसत्ता के विकास के साथ-साथ धर्म की सत्ता का भी विकास हुआ और एक दिन वह मानव-जीवन का मुख्य अंग हो-गया। कालान्तर में इस धर्म को अनेक संघर्षों और परिवर्तनों में से होकर गुजरना पड़ा। पर वह नष्ट नहीं हुआ। आज भी भूमंडल के लगभग सभी देशों में वह किसी-न-किसी रूप में

मानव-जीवन का एक महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट अंग बना हुआ है। इतनी अधिक औद्योगिक और भौतिक उन्नति हो जाने पर भी मनुष्य धर्म से विमुख नहीं हुआ। लेकिन सत्ता और राज को लेकर इस धरती पर जितना रक्तपात हुआ, धर्म को लेकर उससे कम नहीं हुआ। उस रक्तपात का स्मरण करके आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। धर्म के नाम पर ही दयालु ईसा को सूली पर चढ़ना पड़ा। धर्म के नाम पर ही हजरत मुहम्मद ने नाना प्रकार के कष्ट उठाये और उनके नवासों हसन-हुसैन को निर्दयतापूर्वक तलवार के घाट उतार दिया गया। स्पेन में 'इनक्विजिशन' का भीषण शस्त्र रोमन चर्च ने बनाया। इससे वह उन सभीको कुचल देता था जो उसके सामने झुकने से इन्कार कर देते थे। यहूदियों को जिन्दा जलाया गया और ईसाइयों को भूखे शेरों के पिंजरों में डाल दिया गया। धर्म के नाम पर ही क्रुसेडें लड़ी गईं। प्रारम्भ में बहुत काल तक भारत में धार्मिक स्वतन्त्रता अपेक्षाकृत बहुत अधिक रही है। लेकिन बाद में यहांपर भी कम बर्बर घटनाएं नहीं हुईं। स्वामी दयानन्द सरस्वती और गुरु गोविन्दसिंह आदि अनेक महा-पुरुषों को विष का प्याला पीना पड़ा या तलवार के घाट उतरना पड़ा। साम्प्रदायिक उत्पातों की यह करुण कहानी बीसवीं सदी में भी समाप्त नहीं हुई। इससे स्पष्ट है कि मानव-जीवन में धार्मिक स्वतन्त्रता का बहुत बड़ा महत्त्व है। निश्चय ही हर व्यक्ति को अपने धर्मानुकूल आचरण करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। तर्क करना जितना सरल है, आश्वस्त करना उतना ही कठिन है, इसलिए किसी व्यक्ति या सम्प्रदाय को अपने धर्म या मत को किसी दूसरे व्यक्ति या सम्प्रदाय पर बलपूर्वक लादने का अधिकार नहीं है। एकेश्वर-वादी, बहुदेव-वादी, अनात्मवादी, आस्तिक और नास्तिक—मनुष्य को कुछ भी होने का समान अधिकार है।

इसी प्रकार प्रकृति की सारी सम्पदा के उपभोग का अधि-

कार भी सभी मनुष्यो को समान रूप से है। पहले अध्याय में हमने देखा कि आदिम युग मे उसके उपभोग पर कोई प्रतिबन्ध नही था, किंतु जैसे-जैसे समाज और सभ्यता का विकास हुआ, लोभ और स्वार्थ की प्रवृत्ति बढती चली गई। व्यक्तिगत सम्पत्ति बढाने की होड में स्वार्थी और चतुर व्यक्तियों ने दूसरो की सम्पत्ति हडपनी शुरू कर दी। इसके कारण समाज मे आर्थिक विषमता का आरम्भ हुआ और आज यह विषमता अपनी चरम सीमा पर है। आज की स्थिति इतनी जटिल होगई है कि चाहकर भी इस विषमता को आसानी से दूर नही किया जा सकता। लेकिन फिर भी इस बात को सभी स्वीकार करते है कि प्रत्येक मानव को यह अधिकार है कि वह अपनी जीविका का उपार्जन अच्छी तरह कर सके, गरीबी और मोहताजी से मुक्त हो सके। इसे इस प्रकार भी कह सकते है कि प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह किसी की दया पर आश्रित न रहकर आर्थिक मामलो में आत्म-निर्भर हो सके।

भय और अत्याचार भी मनुष्य की स्वतन्त्रता के प्रबल शत्रु है। प्रगति के लिए इनसे मुक्ति पाना अनिवार्य है। जहां युद्ध के बादल गरज रहे हो वहां कोई सुख की नींद कैसे सो सकता है? किसी भी कारण से हो, जबतक एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य का, एक समाज को दूसरे समाज का, एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र का भय सताता रहेगा तबतक मानव-जीवन में निश्चिन्तता नही आ सकती। इस बीसवी सदी मे मनुष्य ने विज्ञान के क्षेत्र मे असीम प्रगति की है। इस प्रगति के कारण आज उसके हाथ में अपनेको सुखी बनाने के अनन्त साधन है। लेकिन सुख और शान्ति के स्थान पर वह भयकर रूप से भयाक्रान्त ही दिखाई दे रहा है। इसी-लिए चारो ओर शान्ति की पुकार मची हुई है। मनुष्य की स्वतन्त्रता और प्रगति का तबतक कोई मूल्य नही है जबतक उसे भय से मुक्ति न मिले।

आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सभी प्रकार के अधि-

कारों के बिना मनुष्य की स्वतन्त्रता अधूरी है। मनुष्य धनी या निर्धन, ऊचा या नीचा, बडा या छोटा होकर पैदा नही होता। इस धरती पर वह अकेला और नगा ही आता है। उसके बाद वह अपनी शक्तियो का विकास करता है। अपनी बुद्धि और अपने परिश्रम के बल पर प्रगति करता है। ये शक्तिया ईश्वर या प्रकृति द्वारा सभी मनुष्यो को समान रूप से प्राप्त होती है। किंतु समाज-रचना इस प्रकार की है कि कुछ लोग उन शक्तियों का उपयोग नही कर पाते। कुछ ऐसे भी है, जिनको इनका उपयोग करने नही दिया जाता। इस प्रकार समाज मे विषमता और भेदभाव पैदा हो जाते है। धनी-निर्धन, ऊच-नीच, बडे-छोटे, छूत-अछूत आदि का वर्गीकरण इसी विषमता और भेदभाव का दूसरा नाम है। जबतक मनुष्य इन विषमताओ पर पूरी तरह विजय नहीं पा लेता, इन भेद-भावो को समूल नष्ट नही कर देता, तबतक उसे अपने खोये हुए मौलिक अधिकार वापस नही मिल सकते।

: ३ :

अधिकारों के लिए संघर्ष

"समाज परिवर्तनशील है। उसमें नित्य नई बातें होना आवश्यक है। जो रीतियां या प्रथाएं अनावश्यक हैं उन्हें दूर करना होगा।"
—प्लेटो

"रूढ़ि का विनाश ही नीति और सदाचार का प्रथम सोपान है।"
—कान्त

"मानव-जाति को प्रगति की ओर ले जाने वाले सब बड़े-बड़े सिद्धान्त आरंभ में मानव-जाति के प्रचलित विश्वासों के प्रतिकूल ही थे और ऐसे व्यक्तियों द्वारा प्रतिपादित किये गए थे, जिनको तत्कालीन समाज ने अपमानित किया, सताया और फांसी तक पर चढ़ाया है।"
—जोसेफ मैजिनी

"दार्शनिकों ने दुनिया की व्याख्या की है, जरूरत इसको बदलने की है।"
—कार्ल मार्क्स

"आदमी की सबसे ज्यादा प्यारी दौलत जिंदगी है और चूंकि आदमी को जिंदगी सिर्फ एक बार मिलती है, इसलिए उसको यह जिंदगी इस ढग से बितानी चाहिए कि मरते वक्त कह सके—मैंने अपनी सारी ताकत, अपनी सारी जिंदगी, दुनिया के सबसे बड़े आदर्श 'मानव-जाति की आजादी' के लिए न्यौछावर कर दी।"
—लेनिन

"जो परिवर्तन और क्रांति अवश्यंभावी है, उसे कोई रोक नहीं सकता। उसमें जितना विलम्ब करने की कोशिश की जायगी उतनी ही दुनिया में हिंसा और रक्तपात की वृद्धि होगी।"
—जूलियन हक्सले

"यदि आप नई रोशनी को ग्रहण करने को राजी और तैयार

नहीं हैं तो जाओ पितृलोक में पूर्व पुरुषों के साथ निवास करो। यहां ठहरने का कौन काम है ? अपनी स्वतंत्रता को बुद्ध, ईसा, मुहम्मद और कृष्ण के हाथ न बेच डालो।" —स्वामी रामतीर्थ

"कोई भी सुधार तभी हुआ है, जब साहसी व्यक्तियों ने समाज में प्रचलित अमानवीय प्रथाएं और रस्में स्वयं ही तोड़ डाली हैं।" — महात्मा गांधी

"कोई संस्था चाहे जितनी प्राचीन हो, चाहे जितनी पवित्र हो, चाहे जितनी ही सनातन हो, मनुष्य से बड़ी नहीं हो सकती। आज हमें उसे तोड़ ही डालना होगा। धूल तो उड़ेगी ही, बालू-चूना तो झड़ेगा ही, ईंट-पत्थर तो खिसककर आदमी के ऊपर गिरेंगे ही, यह तो स्वाभाविक है।" शरच्चन्द्र चटर्जी

"बढ़े चलो।
पुरानी दुनिया के गुजरे हुए खयाल के आदर्शों को छोड़कर बढ़े चलो।
रुको मत, मुड़ो मत।
अतीत की मरी हुई आवाजों को सुनने के लिए थमो मत।
बढ़े चलो, बढ़े चलो।"

— रोमा रोलां

"संघर्ष करो। संघर्ष के मानी जिंदगी हैं, और जितना ही घोर संघर्ष होगा उतना ही जीवन परिपूर्ण तथा गम्भीर बनेगा। तब तुम दरअसल जिन्दा बनोगे और इस तरह की जिंदगी के चंद घंटे घास-फूस की तरह वर्षों के जीवन से ज्यादा गौरवयुक्त हैं।

"संघर्ष करो ताकि सारी दुनिया उभरता हुआ और भरा-पूरा जीवन बिता सके। विश्वास रखो कि इस संघर्ष में तुम्हें वह आनन्द मिलेगा जो और कोई चीज नहीं दे सकती।"

—प्रिंस क्रोपाटकिन

संसार के विभिन्न देशों, विभिन्न जातियों और विभिन्न युगों में पैदा होनेवाले इन क्रान्तिकारी महापुरुषों के ये वचन इस बात के साक्षी है कि मनुष्य ने अपने अधिकारों के लिए सदा

संघर्ष किया है। दुनिया में जितनी बड़ी क्रान्तियां हुई, उन सब के पीछे विचार ही थे। क्या ये विचार स्पष्ट प्रमाणित नहीं करते कि संघर्ष के बिना जीवन नहीं है और संघर्ष मानव-जीवन का जन्म-जन्म का साथी है। मनुष्य दो बातों के लिए संघर्ष करता है—जीवित रहने के लिए और जीवित रहने के अधिकारों के लिए। आदिम युग में उसे अपने जीवन के लिए संघर्ष करना पड़ा. लेकिन आगे चलकर जब उसने अपने सुख के लिए समाज की रचना की तो उसके साथ-साथ मानव-अधिकारों की सृष्टि भी हुई। पिछले दो अध्यायों में इसकी चर्चा हो चुकी है। अपने-आप ही अपने अधिकार समाज को सौंपकर मनुष्य को फिर उन अधिकारों की प्राप्ति के लिए संघर्ष करना पड़ा है। यह बात बड़ी विचित्र जान पड़ती है, परन्तु है सत्य कि प्रभुता के मद में मत्त होकर सत्ताधारी ने उन अधिकारों का दुरुपयोग किया था।

इस संघर्ष का रूप भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न रहा है। लेकिन इसके मूल में एक ही बात पाई जाती है। वह बात है 'आत्मा की स्वतन्त्रता'। इसीका दूसरा नाम है 'व्यक्ति-स्वातन्त्र्य', अर्थात् प्रत्येक मनुष्य अपना, अपने शरीर का और अपने मन का मालिक है। वह अपनी स्वतन्त्रता का अपहरण नहीं सह सकता। संसार का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब-जब राजसत्ता ने अथवा समाज ने उसके उचित अधिकारों पर अंकुश लगाना चाहा है तब-तब वह तिलमिला उठा है और उसने विद्रोह किया है।

किसी समय जब मनुष्य बर्बर था तो कहते है उसे नये विचार प्रकट करने के लिए अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ता था। यूनान देश में एक प्रान्त था, जहां के लोग कोक्रियन कहलाते थे। उनमें यह प्रथा थी कि जब कोई व्यक्ति नये सिद्धान्तों का पता लगाता था या कोई नया विचार प्रकट करना चाहता था तो उसे सब लोगों के सामने अपने गले में रस्सी का फंदा डालकर

खड़ा होना पड़ता था। उसके बाद वह अपनी बात को प्रमाण देकर सिद्ध करने का प्रयत्न करता था। यदि वे सब लोग उसके तर्कों और प्रमाणों से सन्तुष्ट हो जाते तब उसको मुक्त कर दिया जाता था। लेकिन यदि वे सहमत न हो पाते तो फंदे की रस्सी कड़ी कर दी जाती थी। वह आदमी उसी समय और वहीं अपनी इह-लीला समाप्त कर देता था। हम नहीं जानते, यह कहानी सत्य है या काल्पनिक। लेकिन इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि इस संसार में समय-समय पर अनेक स्वतंत्र विचारकों को अपने स्वतंत्र विचारों के लिए अत्याचार सहने पड़े हैं और प्राणों से हाथ धोना पड़ा है। बुद्धिमान् सुकरात की चर्चा हमने पिछले अध्याय में की है। वह ईस्वी सन् से पहले के ४७१वें वर्ष में हुआ था। यूनान उसकी मातृभूमि थी। सत्य की खोज में उसने अपना जीवन बिताया। लेकिन सत्य तो बहुत भयंकर होता है, इसी-लिए उस काल के लोगों ने उसको न्यायालय में घसीटा। बुद्धिमान् सुकरात ने न्यायालय में जो बयान दिया, वह संसार में मानव की दृढ़ता के लिए प्रसिद्ध है। इसी बयान के अन्त में उसने कहा था, "मैं तो यह मानता हूं कि जिसे मैं सद्गुण समझूं उसके बारे में मुझे लोगों के सामने विवेचना करनी चाहिए। यह मेरेलिए ईश्वर का आदेश है। यही नहीं, बल्कि मुझे ईश्वर का यह भी आदेश है कि मैं नैतिक नियमों की सदा शोध करता रहूं। आप यह नहीं समझ सकते, यह मैं जानता हूं; लेकिन इसी कारण मैं चुप नहीं रह सकता।" और वह चुप नहीं रहे। विष पीकर भी चुप नहीं रहे। आज भी अपने विचारों में वह जीवित हैं। इसी प्रकार आज से लगभग दो हजार वर्ष पहले जब ईशु ने विचार-स्वातंत्र्य की घोषणा की, पुरातन रूढ़ियों के प्रति विद्रोह किया तो उन्हें भी उसका मूल्य अपनी जान देकर चुकाना पड़ा। यहूदियों ने उनपर इल्जाम लगाया कि ईशु अपनेको यहूदियों का राजा कहता है। वह अदालत में पेश किये गए और सूबे ने उनसे पूछा, "क्या यह सच है कि तुम अपनेको यहूदियों का

राजा कहलाते हो ?" इसपर ईशु ने उसे समझाया, "मैं जिस राज्य की बात करता हूं, वह पृथ्वी का भौतिक राज्य नहीं,

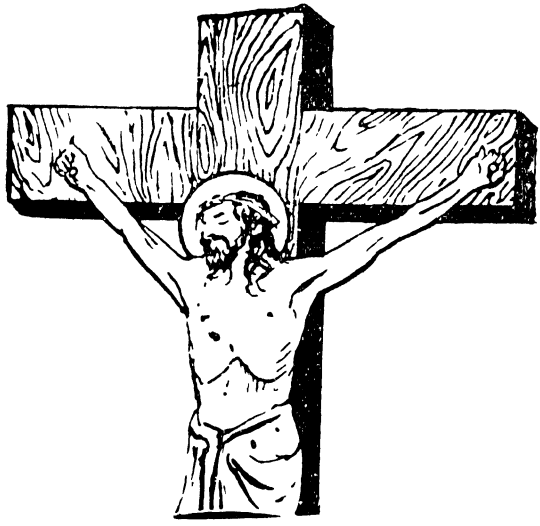

ईसा मसीह
धार्मिक अधिकारों के लिए जो सूली पर लटक गये

बल्कि प्रभु का आध्यात्मिक राज्य है। मैं सत्य का साथी हूं। सत्य के लिए मेरा जन्म हुआ है और सत्य-धर्म का मैं राजा हूं।"

लेकिन यहूदियों को इससे सन्तोष नहीं हुआ, क्योंकि वे 'सत्य' का वही अर्थ समझते थे जो उनके लिए ठीक था और उन्होंने सूबे को विवश किया कि वह ईशु को क्रॉस पर चढ़ने की सजा दे। "अपनी आत्मा मैं तुझे सौंपता हूं," यह कहते हुए ईशु ने अपने प्राण छोड़ दिये। यद्यपि मृत्यु के समय उनके पास रहने की हिम्मत दो-चार स्त्रियों और नन्हें योहान को छोड़कर दूसरा कोई दिखा न सका तो भी मृत्यु के बाद उसके शौर्य का अंश

उसके अनुयायियों में उतरे बिना न रहा। उसकी मृत्यु के बाद अनेक यहूदी ईसाई बने और बहुतों ने सत्य के लिए अपने प्राणों की भेंट चढ़ाई। जिस साम्राज्य-सत्ता ने उसे मृत्यु-दण्ड दिया एक दिन वह भी उसी नये धर्म में लीन हो गई।

किस प्रकार नये विचारों (पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है) को प्रकट करने के लिए गैलीलियो (१५६४-१६४२) को अपमानित होना पड़ा, इसकी चर्चा हम पीछे कर चुके है। विज्ञान के क्षेत्र में कितने ही साहसी वैज्ञानिकों को अपने प्राणों से हाथ धोने पड़े और इसी बलिदान के कारण विज्ञान की इतनी प्रगति हुई।

राजसत्ता के क्षेत्र में भी आदिम युग से लेकर आजतक संघर्ष की यह ज्योति जगमगाती रही है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब-जब राजा निरंकुश हुआ है, जनता ने उसके विरुद्ध विद्रोह की घोषणा की है। भारत में राजा को कभी निरंकुश अधिकार नहीं दिये गए, उसको ईश्वर का अंश मानकर भी उसका अस्तित्व प्रजा के हित में माना गया। राजसत्ता का गौरव प्रजा के रक्षण एवं विश्व-शान्ति में ही निहित है। महाभारत में लिखा है –'धर्मेण व्यवहारेण प्रजाः पालय।" यही नहीं, महाभारत आगे कहता है—"एतत्ते राजधर्माणा नवनीतम् बृहस्पतिर्हि भगवान्नयायुयम् धर्मम् प्रशंसीत।" अर्थात्, न्याययुक्त रक्षा करने से बढ़कर अन्य कोई धर्म नहीं है। कौटिल्य ने भी कहा है—"जो राजा के सुख का कारण हो, उसे राजा को मंगलमय न समझना चाहिए। किंतु जिस हेतु प्रजा हर्षित रहे उस ही राजा को कल्याणप्रद समझना चाहिए।"[१] यही नहीं, वैदिक युग में तो राजा के अधिकार बहुत ही कम थे। वाल्मीकीय रामायण के अनुसार राजा देश का शासन एक मंत्री-परिषद की सहायता से चलाते थे। उस परिषद में दो

१. कौटिल्य अर्थशास्त्र, १९ वां प्रकरण, श्लोक ३९।

प्रकार के सदस्य होते थे : १. अमात्यगण अर्थात् मन्त्रिमंडल, २. गुरुजन या द्विजगण अर्थात् परामर्शदातृ समिति। मन्त्रियों को अधिकार था कि वे राजा को दुष्कर्मों और जनता से बरबस अधिक कर वसूल करने से रोक।

लेकिन फिर भी ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है जब वह निरंकुश हो उठा है। महाभारत में एक ऐसे ही राजा की कहानी आती है। प्राचीन काल में वेन नाम का एक राजा था। वह राजा राजधर्म का उल्लंघन कर प्रजा पर अत्याचार किया करता था। जब वह राजा प्रजा के धर्म से विचलित हो गया और उसे सताने लगा तो उसके मन्त्रियों ने उसे समझाया, लेकिन वह नहीं माना। ऋषियों ने समझाया तब भी नहीं माना। तब प्रजा उसके विरुद्ध उठ खड़ी हुई और ऋषियों ने उसे मार डाला; क्योंकि जो राजा अपनी प्रजा को सताता है, महाभारत में उसे पागल कुत्ते की भांति मार डालने का आदेश है। इस प्रकार नहुष, यवनराज, सुदास सुमुख निमि तथा कंस नाम के राजा अत्याचारी होने के कारण नष्ट होगये। ये राजा ऐतिहासिक हैं या नहीं, इस बात की चर्चा यहां असंगत है। इनकी कथाएं इसका प्रमाण है कि जब-जब राजसत्ता से संघर्ष हुआ, उसको जनता के सामने झुकना पड़ा है। पश्चिम के देशों में भी राजा का सर उतार लेने के अनेक उदाहरण मिलते हैं। इंग्लैंड ने १६४९ ईस्वी में अपने अत्याचारी राजा चार्ल्स प्रथम के विरुद्ध विद्रोह किया था और उसका सिर उतार डाला था। इसी प्रकार फ्रांस ने १६वें लुई के प्रति विद्रोह किया और उसका सिर काट डाला। यह अक्तूबर १७९३ की घटना है। अभी-अभी बीसवीं सदी के आरम्भ में रूसी क्रांति के समय यह घटना फिर दोहराई गई और बोल्शविकों ने निरंकुश जार निकोलस का सिर काट डाला। यह सब इसीलिए तो हुआ कि इन निरंकुश शासकों ने प्रजा के मानवीय अधिकारों को कुचलने का प्रयत्न किया था।

लेकिन हमेशा ही बादशाह का सिर काटने की आवश्यकता पड़ी हो, ऐसी बात नहीं है। उसके बिना भी प्रजा ने विद्रोह करके अपने अधिकारों की रक्षा की है। इंग्लैंड में बहुत पहले यह प्रथा थी कि अपराधियों को अदालत के सामने हाजिर किये बिना ही सजा दी जाया करती थी। बेचारे कैदी अपनी सफाई में कुछ कह-सुन नहीं पाते थे। इसके लिए बहुत बार संघर्ष हुआ और इस बात के प्रमाण मिलते है कि १२ वी सदी में लोगो को कुछ सफलता मिली। लेकिन वास्तविक सफलता मिली सन् १६८६ ईस्वी में। इस वर्ष इग्लैड की सरकार को बन्दी प्रत्यक्षीकरण अधिनियम (हैबियस कार्पस ऐक्ट) बनाकर अपराधी को अदालत के सामने हाजिर करने के लिए आज्ञा जारी करनी पड़ी।

लेकिन इंग्लैड में 'अधिकारों' की लड़ाई इससे बहुत पहले आरम्भ हो चुकी थी। इस लड़ाई में सबसे महत्त्वपूर्ण विजय उन्होंने सन् १२१५ ईस्वी में प्राप्त की। उस समय वहां जॉन नामक राजा का शासन था। इंग्लैड के सरदारों ने उसे टैम्स नदी के रनीमीड नाम के टापू मे घेर लिया और तलवार के जोर से डरा-धमकाकर 'मेग्ना कार्टा' अर्थात् महान् घोषणापत्र पर उससे जबरदस्ती दस्तखत करवा लिये। इस चार्टर में ६३ धाराएं थी और जनता के हर वर्ग को कुछ-न-कुछ अधिकार दिये गए थे। इसकी सबसे महत्त्वपूर्ण धारा सम्भवतः यही थी कि किसीको भी न्याय देने से इन्कार नही किया जायगा, न्याय करने में देर नही की जायगी और न न्याय बेचा जायगा। इसके अतिरिक्त कोई स्वतत्र व्यक्ति अन्यायपूर्ण रीति से न तो कद किया जायगा, न उसे सजा दी जायगी और न उसे देश से बाहर निकाला जायगा। इस चार्टर में यह भी खास तौर से लिखा गया था कि राजा किसी व्यापारी की सम्पत्ति या उसकी आजादी में बिना उसके बराबरवालों की राय के दखल नहीं दे सकता। इसी बात से जूरी की प्रथा निकली। 'मेग्ना कार्टा'

बनने के थोडे ही दिनो बाद इग्लड मे धीरे-धीरे राष्ट्रीय सभा का विकास होने लगा।

जान मेग्ना कार्टा पर मुहर लगाते हुए

यह 'मेग्ना कार्टा' मानव-अधिकारो के लिए सघर्ष के इतिहास मे सम्भवतः सबसे बडी महत्त्वपूर्ण घटना है।

इसके लगभग साढे पाचसौ वर्ष बाद फ्रैंकलिन ने लिखा—"अत्याचारियो के खिलाफ बगावत ईश्वर की फर्माबरदारी है।" यह फ्रकलिन अमरीका के स्वाधीनता सग्राम का एक महत्त्वपूर्ण नेता था। जार्ज वाशिगटन के नेतृत्व मे अमरीकी उपनिवेशो ने अपनी स्वाधीनता के लिए इग्लैड से सघर्ष

किया । वहां के तेरह राज्यों ने मौलिक अधिकारों को प्राप्त करने के लिए 'स्वाधीनता की घोषणा' की। प्रारम्भ में उनकी पुकार यह थी—"प्रतिनिधित्व नही तो टैक्स नहीं", लेकिन जब यह बात स्वीकार नहीं की गई तो सन् १७७६ ई०

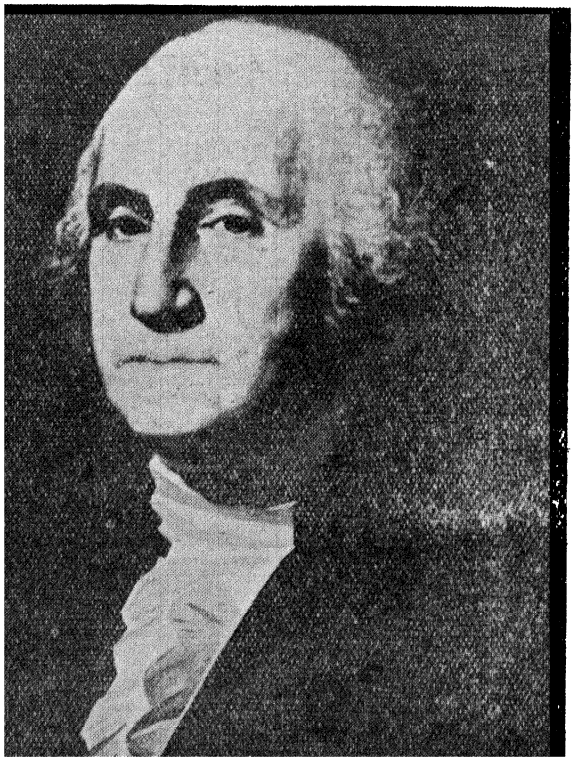

जार्ज वाशिंगटन
जिन्होंने अमरीकी उपनिवेश के स्वाधीनता-संघर्ष का नेतृत्व किया

में स्वाधीनता का घोषणा-पत्र प्रकट हुआ। उसमें कहा गया था—"जन्म से सब मनुष्य बराबर हैं।" इस वाक्य की पूर्ण सत्यता पर बहस हो सकती है, लेकिन यह सत्य है कि अमरीकी उपनिवेश स्वतंत्र होगये। इसी प्रकार इस घटना के कुछ ही वर्ष बाद सन् १७८९ ई० में फ्रांस में क्रान्ति का विस्फोट हुआ। वहां की जनता ने लुई १६वे के विरुद्ध विद्रोह किया और अपने अधिकारों तथा मूलभूत स्वतंत्रता की घोषणा की। उनका नारा था—"समानता, स्वतत्रता, मित्रता।" इस घोषणा के पीछे वाल्तेयर, रूसो और टॉमस पेन के विचार काम कर रहे थे। टॉमस पेन एक अंग्रेज था। इसने 'दी राइट्स आफ मेन" (मानव-अधिकार) नाम की एक पुस्तक लिखी और इसी कारण उसे इंग्लैंड से भागना पड़ा था। क्रांति की सफलता के बाद फ्रांस

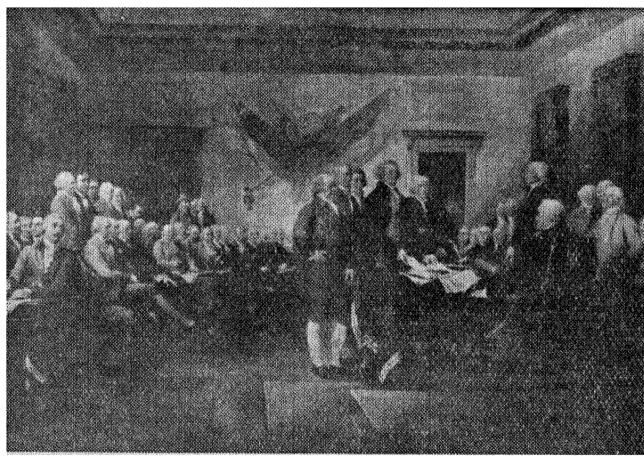

अमरीका की स्वाधीनता की घोषणा

में जो नया शासन-विधान बनाया गया उसमें सबसे पहले जनता के आधारभूत अधिकारों की घोषणा की गई। उन अधिकारों

में मुख्य थे—१. सब मनुष्य स्वतन्त्र उत्पन्न होते है, और उनके अधिकार समान है। सामाजिक भेद का आधार सार्वजनिक उपयोगिता के सिवा अन्य कुछ नही है। २. राज्य की स्वामित्व शक्ति जनता मे निहित है। ३. स्वतन्त्रता का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक मनुष्य को वह सबकुछ करने का अधिकार है, जिससे कि किसी दूसरे को हानि पहुचने की सम्भावना न हो। ४. सरकार का प्रयोजन मनुष्यो के आधारभूत अधिकारों को सुरक्षित रखना है। ५. जनता की सार्वजनिक इच्छा ही कानून है। प्रत्येक नागरिक को अधिकार है कि स्वयं या अपने प्रतिनिधि द्वारा कानून का निर्माण करने में हाथ बंटावे। ६. प्रत्येक मनुष्य के लिए कानून एक ही होना चाहिए। ७. प्रत्येक मनुष्य तबतक निरपराधी समझा जायगा जबतक कि कानून के अनुसार बने हुए न्यायालय उसे अपराधी साबित नहीं कर देगे। कानून के प्रतिकूल किसी मनुष्य को न कैद किया जा सकता है, न अपराधी कहा जा सकता है और न सजा दी जा सकती। ८. किसी भी मनुष्य को अपनी सम्मतियों के कारण, चाहे वे सम्मतियां धार्मिक मामलों के सम्बन्ध में भी हों, सजा नही दी जायगी, बशर्ते कि वे सम्मतिया सार्वजनिक व्यवस्था में बाधा डालनेवाली न हो। ९. अपने विचारों और सम्मतियों को स्वतन्त्रतापूर्वक प्रकट कर सकना मनुष्यों के सबसे अधिक बहुमूल्यों अधिकारों में से एक है। अतः प्रत्येक मनुष्य को यह अधिकार है कि वह स्वतंत्रता के साथ भाषण कर सके, लिख सके और मुद्रण कर सके। परन्तु यदि वह इस स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करेगा—दुरुपयोग किस प्रकार होता है—यह कानून स्पष्ट करेगा—तो जिम्मेदारी उसीकी होगी। १०. प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार है कि वह स्वय या अपने प्रतिनिधि द्वारा इस बात का निश्चय करने में हाथ बटावे कि सार्वजनिक कोष के लिए कितने धन की आवश्यकता है, इस धन को खर्च किस प्रकार किया जाय, और इस धन को प्राप्त

करने के लिए कौन-कौन से टैक्स लगाये जाय, ये टैक्स किस प्रकार से वसूल किये जाय और कितने समय के लिए कायम रहें। ११. जनता को हक है कि प्रत्येक राज-कर्मचारी से उसके कार्य का ब्योरा ले सके। १२. सम्पत्ति पर वैयक्तिक अधिकार एक पवित्र तथा अनुल्लंघनीय अधिकार है।

जुल्म की चरमसीमा — दासता

यह ठीक है स्वय फ्रास मे ही इन अधिकारों की अवहेलना की गई; लेकिन साथ ही यह भी ठीक है कि मनुष्य अपने अधिकारो के प्रति सदा सजग रहा है और जब-जब अवसर मिला, उसने

पूरी क्रियात्मक शक्ति के साथ उनकी घोषणा की है। यह भी सही है कि इस क्रान्ति के कारण सारे विश्व में धनी और निर्धन सभी व्यक्तियों के कुछ भौतिक अधिकार मान लिये गए।

इसके बाद जो महान क्रांति यूरोप में हुई, वह थी सन् १९१७ ई० में रूस की 'अक्तूबर-क्रान्ति'। प्रथम विश्व-महायुद्ध के दौरान में जनता ने अत्याचारी जार निकोलस के विरुद्ध विद्रोह किया और उसके सलाहकार रासपुटिन को गोली से मार दिया। यह क्रान्ति रोटी माँगनेवाले मजदूरों के इस नारे से शुरू हुई — 'निरंकुशता का नाश हो', और इसका अन्त हुआ लेनिन के नेतृत्व में 'श्रमिकों की विजय' में। अक्तूबर का यह विद्रोह सर्व-

श्रीमती हैरियट एलीजबेथस्टो
'टामकाका की कुटिया' की लेखिका

हारा्रों के अपने मौलिक अधिकारों को प्राप्त करने का स्वर्णिम उदाहरण है।

दासता की प्रथा जितनी पुरानी है उतनी हृदय-द्रावक भी। मनुष्य मनुष्य पर कितना जुल्म कर सकता है, शायद यह इसकी सीमा है। एक समय था जब यह प्रथा उचित मानी जाती थी। उसके प्रति विद्रोह कब आरम्भ हुआ, यह ठीक-ठीक नहीं मालूम; पर सबसे पहले सम्भवतः रोम में गुलामों ने बलवा किया। वह बड़ी बेरहमी से दबा दिया गया था। यह ईसापूर्व पहली सदी की बात है। ढेर-के-ढेर गुलाम जानवरों की तरह अमीरों की सम्पत्ति थे। जब रोम में विलासिता बढ़ गई और बलवे होने लगे तब गरीब और पददलित गुलामों ने स्पार्टेकस नाम के एक ग्लेडिएटर के नेतृत्व में यह असफल बलवा किया। अकेले रोम में एक जगह छः हजार गुलाम सूली पर चढ़ा दिये गए। लेकिन इसके बावजूद जैसे-जैसे दासों पर अत्याचार बढ़ते रहे, वैसे-वैसे उस प्रथा के प्रति घृणा के भाव भी बढ़ते रहे। १९वीं सदी के आरम्भ में ब्रिटिश पार्लामेंट ने गुलामी की प्रथा के खिलाफ कड़े कानून पास किये। सन् १८३३ में वहां दासता का अन्त कर दिया गया। धीरे-धीरे दूसरे देशों में भी ऐसा ही होने लगा। लेकिन इससे गुलामों का व्यापार बन्द नहीं हुआ, बल्कि उन्हें और भी कष्ट होने लगा, क्योंकि अब उन्हें खुले तौर पर नहीं ले जा सकते थे। एक अमेरिकी लेखक ने लिखा है, "कभी-कभी बर्फ से भरी गाड़ी पर सवार होनेवालों की तरह एक-दूसरे के ऊपर टांग-पर-टांग रखकर लाद दिया जाता था।" इसी बीच दक्षिण के राज्यों में गुलामी की प्रथा को बिल्कुल उठा देने का आन्दोलन शुरू हुआ। इस आन्दोलन का नेता था विलियम लायड गैरीसन। सन् १८३१ ई० में उसने यह आन्दोलन शुरू करने के लिए 'लिबरेटर' नामक पत्र निकाला था और बड़ी सख्ती के साथ इस प्रथा पर चोट की थी। उसने लिखा—"मैं बहुत उग्र हूं। मैं गोलमाल बात नहीं करूंगा। मैं क्षमा नहीं करूंगा और न तिलभर पीछे हटूंगा। मेरी बात सुननी ही पड़ेगी।" इसी समय श्रीमती हैरियट एलीजबेथस्टो ने 'टाम काका

की कुटिया' नामक एक उपन्यास लिखा। वह बडा हृदय-वेधक था। पढकर जनता के हृदय मे आग धधक उठी और वह

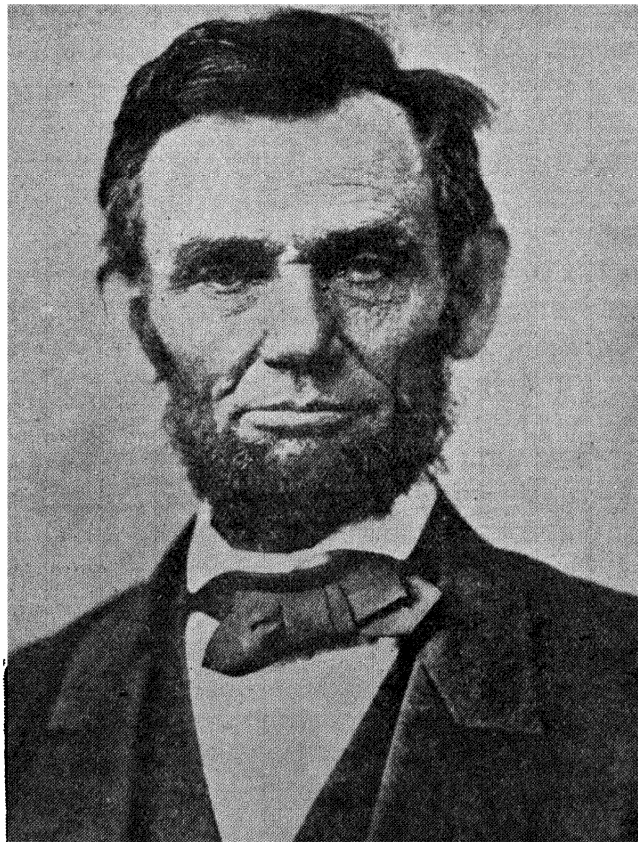

राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन
जिन्होंने अमरीका में दासता का अंत किया

दक्षिण के राज्यों से, जहां यह प्रथा प्रचलित थी, घृणा करने लगी। जब वह लिंकन से मिली तो उन्होंने कहा था—"क्या इसी छोटी-सी महिला ने वह महान् युद्ध करा दिया।" अमेरिका में दासता को बन्द करने का श्रेय इन्हीं राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन को है। बचपन में वह अपने मित्रों के साथ एक बार यात्रा पर निकले। घूमते-फिरते हुए वह एक ऐसे स्थान पर पहुंचे, जहां एक वर्णसंकर तरुण नीग्रो कन्या को बोली लगाकर नीलाम किया जा रहा था।। घोड़ी की तरह कमरे में दौड़-दौड़कर अपनी चाल व अंग-प्रत्यंग की हरकत बताने के लिए इस लड़की को बुरी तरह यत्रणा-पूर्वक चुटकी काटी जाती थी। बेचारी असहाय लड़की को यह सब सहना पड़ता था, जिससे बोली लगानेवाला उस खरीद की हुई वस्तु के अंगों व हरकतों से पूर्ण सन्तुष्ट हो सके। लिंकन ने यह सब देखा। उसका हृदय रो उठा। वह चुपचाप खड़ा रहा। फिर उसने कहा, "भगवान् के लिए हम लोगों को यहां से चल देना चाहिए। यदि कभी मुझे इस प्रथा पर चोट करने का अवसर मिला तो मैं कसकर चोट करूंगा।"

और उसे अवसर मिला।

संयुक्त राष्ट्र अमरीका का वह राष्ट्रपति (१८६१-६५) बना। दासता मिटाने के इस प्रश्न को लेकर अमरीका में गृह-युद्ध हुआ, लेकिन लिंकन पीछे नहीं हटा। उसे अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा, पर अमरीका से दासता सदा-सदा के लिए मिट गई।

दासता के समान ही भारतवर्ष में अछूतों का प्रश्न था। अछूतों का जन्म कैसे हुआ, इस बात की चर्चा यहां असंगत है। लेकिन यह सत्य है कि समय-समय पर उनपर अमानुषिक अत्याचार किये गए। उच्च वर्णवालों ने उनसे किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखा। यहांतक कहा जाता है कि यदि उनके कानों में वेद-मत्र की ध्वनि भी पड़ जाती थी तो उनमें शीशा भर दिया जाता था। एक स्थान पर लिखा है—"जब अछूत

ब्राह्मण को अपनी ओर आते हुए देखता है तो उसे झटपट रास्ता छोड़ देना पड़ता है और दस पग के अन्तर पर अपनी दीनता दिखाने के लिए धूल में लेटकर प्रणाम करना पड़ता है, नहीं तो ब्राह्मण के नौकर उसे पीट-पीटकर मार डालते हैं।"

इस अमानुषिक व्यवस्था के विरुद्ध आदि-काल से अनेक बार विद्रोह किया गया। ऐतिहासिक रूप से सबसे पहले बुद्ध ने इस प्रथा पर चोट की। लेकिन वह चोट बहुत गहरी नहीं थी। अशोक के काल में भी कुछ सुधार हुआ। उसके बाद मध्यकालीन सतों ने विद्रोह का स्वर बुलंद किया। इनमें कबीर, दादू, रैदास, नामदेव और सिक्ख गुरु तथा ऐसे ही सैकड़ों महात्मा थे। रामानुज और रामानंद ने उनका उद्धार करने के लिए स्वयं बहुत कष्ट उठाये। अछूतों में भी नंद, रविदास और चोखा मेला जैसे संत हुए।

स्वामी दयानन्द
जिन्होंने स्त्रियों और अछूतों
के लिए संघर्ष किया

वर्तमान काल में राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती आदि सुधारकों ने इस प्रथा पर गहरी चोट की, लेकिन सबसे गहरी चोट की महात्मा गांधी ने। उन्होंने लाठियां खाईं, पर अछूतों, अन्त्यजों को उच्च वर्ग के समान अधिकार दिलाने का आंदोलन बन्द नहीं किया। इन सब आन्दोलनों के फलस्वरूप ही स्वतंत्र भारत के संविधान में इस प्रथा का अन्त कर दिया गया। संविधान में दो महत्त्वपूर्ण घोषणाएं की गईं—१. कानून की दृष्टि में सभी नागरिक समान हैं। नौकरी, कारोबार आदि में जात-पात, लिंग व धर्म की दृष्टि से कोई भेद-भाव नहीं किया जायगा। २. अस्पृश्यता को कानूनी तौर पर अपराध ठहरा दिया गया।

नारी के अधिकारों की कहानी भी इसी प्रकार की है।

आज लगभग सारे संसार में नारी पर किसी प्रकार का कोई बंधन नही है। लेकिन इन बधनों को हटाने के लिए अनेकानेक महापुरुषों को कितना सघर्ष करना पड़ा है, कितने कष्ट उठाने पड़े है, इसका लेखा-जोखा बहुत लम्बा है और बहुत करुण भी। पिछली शताब्दी में राजा राममोहन राय और स्वामी दयानद ने पूरी शक्ति से नारी की समानता का प्रचार किया। फिर महर्षि कर्वे, पडिता रमाबाई और लाला देवराज आदि ने शिक्षा के क्षेत्र में बड़ा ठोस काम किया। वस्तुतः पहले महायुद्ध के बाद स्त्रियों को बहुत-से कानूनी, सामाजिक और परम्परागत बंधनों से छुटकारा मिला। पूर्व में भी तुर्की से हिदुस्तान और चीन तक जागृति की यह लहर व्याप्त होगई। नारियों ने इग्लैड में भी मताधिकार के लिए सघर्ष किया। मिस्र में 'नील की बेटियां' नामक संस्था ने बड़ा संघर्ष किया, लेकिन आज भी कई देश है, जहा स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त नहीं है। इसी

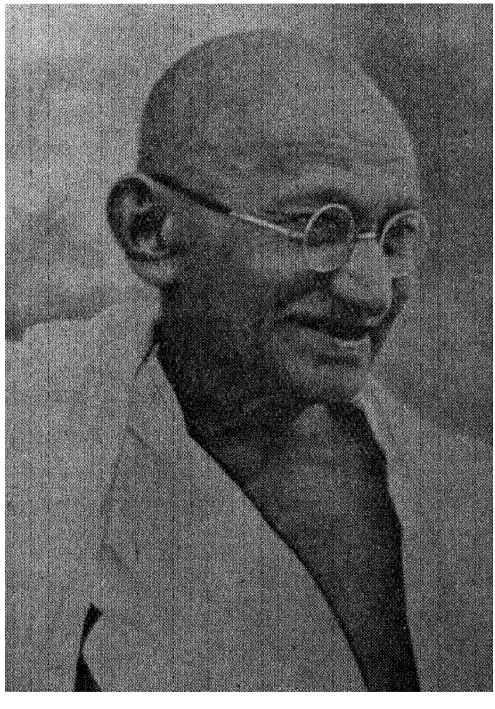

महात्मा गांधी
जिन्होंने मानव-अधिकारों के लिए प्राणों की आहुति दे दी

शताब्दी के आरम्भ में जब अफगानिस्तान मे अमानुल्ला ने सुधार की आवाज उठाई तो उसे अपनी गद्दी से हाथ धोना पडा ।

सन् १८५७ मे लेकर १९४७ मे स्वतत्रता प्राप्त करने तक भारत मे जो सग्राम चला वह भी मानव-अधिकारो के सघर्ष

इंग्लैंड में महिलाओ के समानाधिकार-आन्दोलन की जन्मदात्री स्व० श्रीमती एमेलिन पंखर्स्ट

की एक गौरवमय कहानी है । सदियो तक विदेशी शासन के कारण भारत की चेतना शून्यप्राय होगई थी, लेकिन जब उसका सम्पर्क पश्चिम के नये विजेताओ से हुआ तो उसकी चेतना जाग उठी । लोकमान्य तिलक ने भारतीय जनता के अधिकारो की माग करते हुए यह घोषणा की कि "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम उसे लेकर ही रहेगे ।" इसी समय अफ्रीका मे मोहनदास करमचन्द गाधी का एक मसीहा के रूप में आविर्भाव हुआ । गुलामी के बंधन काट फेंकने

के लिए उसने अहिंसक सत्याग्रह जैसे अनूठे रास्ते का आविष्कार किया। अफ्रीका में भारतीयों ने अपने अधिकारों के लिए जो संघर्ष किया और उस संघर्ष में जो सफलता प्राप्त की उसने भारत के स्वाधीनता के संग्राम को बहुत बल दिया। गांधीजी भारत आये और स्वाधीनता के संग्राम की बागडोर आप-ही-आप उनके हाथों में पहुंच गई। उन्होंने इस बात पर बहुत जोर दिया कि धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता के बिना राजनैतिक स्वतन्त्रता का कोई मूल्य नहीं है। केवल राजनैतिक स्वतंत्रता को वह पूर्ण नहीं मानते थे। वास्तविक स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए उन्होंने खादी और हरिजन-आंदोलन का सूत्रपात किया। स्वराज्य का अधिकार सबसे मौलिक अधिकार है। इसकी प्राप्ति के लिए 'भारत छोड़ो'-आंदोलन के रूप में अधिकारों के लिए संघर्ष अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया। अंत में यह आंदोलन खत्म हुआ और भारत में 'सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य' की स्थापना होगई। अपने संविधान में भारत ने मानव-मात्र को समान मानते हुए सम्राट् अशोक के धर्मचक्र को अपना प्रतीक बनाया। यह चक्र मौलिक अधिकारों पर आधारित शाश्वत नियम का प्रतीक है। इन्हीं सम्राट् अशोक ने मानसेरा के छठे लेख में लिखा था 'नास्ति हि कर्मतर सर्वलोक हितेन' अर्थात् सब लोगों के अर्थात् जनता के हित करने से अधिक करणीय कर्म कोई नहीं है। भारत के संविधान का भी यही लक्ष्य है। मानव-मानव के बीच की खाई को मिटाने के लिए राष्ट्रपिता गांधी को अपने प्राणों की बलि देनी पड़ी।

मानव-अधिकारों के संघर्ष की कहानी समाज के उन संगठनों के लिखित इतिहास के साथ-साथ शुरू होती है जहां इन्सान ने नियमों का पालन करना सीखा। लेकिन अपने खंडहरों पर खड़ा हुआ अतीत हमें अब भी विशाल और शक्तिशाली साम्राज्यों का याद दिलाता है—उन साम्राज्यों की जिनमें, धन और ऐश्वर्य

के लिए मनुष्य की उत्कट अभिलाषाओं और महत्वाकांक्षाओं के कारण विजय की तीव्र इच्छा, निरंकुशता, अत्याचार, धर्मान्धता और असहिष्णुता नग्न नृत्य करती रहती थी। इस व्यवस्था में मनुष्य को अपने जन्मजात अधिकारों की रक्षा करने और प्रतिष्ठापूर्ण जीवन बिताने का अधिकार नहीं था। किंतु इन्हीं अत्याचारों ने मनुष्यों को अपना मूल्य समझने की चेतना और निरंकुश अत्याचारियों से मोर्चा लेने की प्रेरणा प्रदान दी। इस विराट संघर्ष की कुछ झांकी ऊपर दी जा चुकी है। १८वीं और १९वीं शताब्दी में यूरोप में जो औद्योगिक क्रांति हुई, उससे भी जन-साधारण को अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा मिली। संघीय संतुलन के अभाव और प्रतिद्वन्द्वात्मक राष्ट्रीयता के कारण बीसवीं शताब्दी के तीन दशकों में ही यूरोप को दो महायुद्धों का रणक्षेत्र बनना पड़ा। इन महान युद्धों का प्रभाव सारे विश्व पर पड़ा और लोगों में यह चेतना पैदा हुई कि स्वतंत्रता के समान 'शांति' भी उनका जन्मसिद्ध अधिकार है। इस अधिकार की रक्षा के लिए पहले महायुद्ध के बाद 'लीग आव नेशन्स' की स्थापना हुई। मानव-मानव के बीच संघर्ष न हो, इस बात का प्रयत्न लीग आव नेशन्स ने किया। किंतु महायुद्ध में विजयी राष्ट्रों की बदनीयत नीति के कारण लीग अपने उद्देश्य में सफल न हो सकी। उसका परिणाम यह हुआ कि बीस वर्ष बाद ही संसार को दूसरे महायुद्ध में फंसना पड़ा। पहले महायुद्ध की चोट मानव अभी भूल भी नहीं पाया था कि दूसरे महायुद्ध ने उसे और भी अशांत और भयभीत कर दिया। इसीलिए इस महायुद्ध के समाप्त होते-न-होते विश्व के मनीषियों और राजनेताओं ने पूरी ईमानदारी के साथ अनुभव किया कि किसी-न-किसी रूप में विश्व के एकीकरण के बिना मानव का जीवन निरापद नहीं है। अतः उन्होंने एक बार फिर 'लीग ऑव नेशन्स' के खंडहरों पर एक नई अंतर्राष्ट्रीय संस्था को जन्म दिया।

: ४ :

मानव-अधिकारों की घोषणा

आज से डेढसौ वर्ष पूर्व विजय के अभिमान में नेपोलियन ने एक दिन दावा किया था - "मैं सब राष्ट्रों को मिलाकर एक कर दूंगा।" बाद में जब वह हार गया और उसे सेंट हेलेना में निर्वासित कर दिया गया तो उसे अपनी इस गर्वोक्ति पर विचार करने का अवसर मिला। और यही विचार उसके हृदय में सही रूप में पैदा हुआ "कभी-न-कभी परिस्थितियों के जोर से राष्ट्रों का यह मेल होगा। गाडी चल पडी है और मुझे यह दिखाई देता है कि मेरे चलाये हुए हुकूमत के तरीके का खात्मा होने के बाद यूरोप में बराबरी कायम करने का अगर कोई तरीका है तो वह एक राष्ट्रसंघ के द्वारा ही हो सकता है।"

नेपोलियन से पहले भी यह विचार लोगों के मन में पैदा हुआ था। उसके बाद भी हुआ। निरन्तर सौ वर्ष तक यह विचार-मंथन चलता रहा, लेकिन इसको अमली रूप प्रथम विश्व-युद्ध के बाद ही दिया जा सका। यह विश्व-युद्ध ११ नवंबर १९१८ को समाप्त हुआ। लेकिन उससे पहले ही पोप ने युद्ध बंद करने की अपील की थी। उसके विचार में ईसाई धर्म के ऊपर बोल-शेविक क्रांति द्वारा जो नई विपत्ति आई थी, उसे दृष्टि में रखते हुए यह आवश्यकता कि ईसाई धर्म को माननेवाले यूरोपियन राज्य आपस के इस युद्ध को बंद कर दें और परस्पर मिलकर अपने झगडों को निबटा लें। उसके संधि-प्रस्ताव में जो प्रमुख बातें थीं उनमें एक यह भी थी—"आपस के झगडों को निबटाने के लिए पंचायत की पद्धति का आश्रय लिया जाय तथा कौन-सा

मंजूरी मिल जाने पर वह और बातों में झुक गया। सभी जानते हैं कि दूसरे विश्व-युद्ध के बीज वर्साई की संधि में ही बो दिये गए थे।

राष्ट्रसघ (लीग ऑव नेशन्स) की स्थापना हुई और उससे अतर्राष्ट्रीयता की प्रवृत्ति को बहुत बल मिला। इस सघ ने न

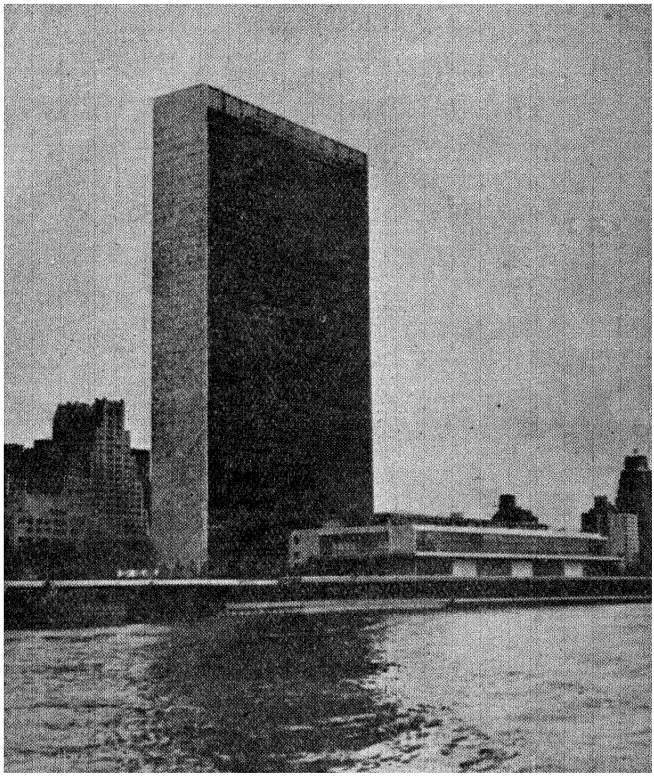

राष्ट्रसघ का भवन

केवल राजनैतिक झगड़ों को निबटाने का काम किया, अपितु दास-प्रथा को नष्ट करने, स्त्रियों के क्रय-विक्रय को रोकने, अल्पसंख्यक जातियों के हितों की रक्षा करने, आर्थिक, सामाजिक व साहित्यिक क्षेत्र में सहयोग स्थापित करने और इसी प्रकार के अन्य सर्व-हितकारी मामलों के सबध में भी बड़ा उपयोगी काम किया। ऐसा लगा कि विल्सन ने जो सोचा था कि जब दुनिया के सब राष्ट्र एक साथ मिलकर बैठेंगे, एक-दूसरे के सुख-दुःख की बात सुनेंगे तो मनमुटाव कम होगा, वह अब पूरा हो सकता है। सन् १९२४ ई० से लेकर सन् १९३० ई० तक राष्ट्रसघ की खासी उन्नति हुई और मानव-जाति प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ी।

लेकिन अतत: मानव का यह स्वप्न भी विफल होगया। राष्ट्रसंघ जो चाहता था, वह न कर सका। यह ठीक है कि उसकी सफलताओं की सूची लबी है, लेकिन यह भी सच है कि वह युद्ध को न रोक सका। दूसरा महायुद्ध इसका स्पष्ट प्रमाण है। राष्ट्रसघ की इस निर्बलता और असफलता के कई कारण थे। उनमें सबसे पहला और सबसे प्रमुख कारण यह था कि संयुक्त राज्य अमेरिका शुरू से ही उसमें सम्मिलित नहीं हुआ। राष्ट्रसघ की स्थापना का प्रधान श्रेय अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन को है। परतु जब सस्थापक ही अपनी स्थापित की हुई सस्था का बहिष्कार करे तो उसका निर्बल होना स्वाभाविक है। इसका विधान भी बहुत ढीला-ढाला था। इसके अतिरिक्त अपनी बात मनवाने का इसके पास कोई साधन नहीं था। इसलिए यह राष्ट्रसंघ दूसरे महायुद्ध को नहीं रोक सका, बल्कि स्वय ही समाप्त होगया।

मुसोलिनी और हिटलर आदि ने राष्ट्रसंघ की तनिक भी चिंता नहीं की और देखते देखते दूसरा विश्वयुद्ध बड़ी तेजी से सारे संसार में फैल गया। बहुत शीघ्र ही समझदार लोगों ने यह अनुभव कर लिया कि प्रथम विश्वयुद्ध के समय से दूसरे विश्वयुद्ध तक मनुष्य की विनाश करने की शक्ति बहुत बढ़ गई

है। इसलिए यदि युद्ध रोकने का प्रयत्न नही किया गया तो मनुष्य के साथ-साथ उसकी सभ्यता और सस्कृति भी सदा-सदा के लिए समाप्त हो जायगी। उन्होने यह भी अनुभव किया कि अब समय आ गया है कि मानव-अधिकारो की दृढता के साथ रक्षा की जाय। युद्ध से, समान रूप से त्रस्त विश्व की जनता ने मानव-जाति के सगठित होने की आवश्यकता को बड़ी तीव्रता से महसूस किया। उन्हें इस बात से गहरा सदमा पहुंचा कि लाखों-करोड़ो मनुष्य अपने घरों से बाहर खदेड़ दिये जाते हैं, उन्हें सताया जाता है और उन्हें मार दिया जाता है। बड़ी सरलता से वे अपने सारे अधिकार खो देते है। उन्होने इस बात को भी महसूस किया किया कि इन अधिकारों का हनन ही युद्ध का सबसे बड़ा कारण है।

प्रथम महायुद्ध की समाप्ति अमेरिका के राष्ट्रपति वुडरो विल्सन के दखल देने पर हुई थी। इस बार अमेरिका ने दूसरे विश्व-युद्ध में और भी अधिक रुचि ली। वह मित्र-राष्ट्रो के साथ कन्धे-से कन्धा मिलाकर लड़ा ही नही, बल्कि राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने इस बात का भी प्रयत्न किया कि विश्व में स्थायी शांति स्थापित हो। विश्व-युद्ध की भयकरता को देखते हुए पहले से ही मित्र-राष्ट्रों के नेताओ ने इस बात पर विचार करना आरभ कर दिया था कि युद्ध की समाप्ति पर जब पुनर्निर्माण का प्रश्न उठेगा तो कौन-से सिद्धांत और आदर्श उनके सामने रहेगे। १९४१ में जब चारों ओर हिटलर की विजय के नारे गज रहे थे और ऐसा जान पड़ता था कि अब जल्दी ही समूचे यूरोप पर हिटलर का अधिकार हो जायगा, उस समय अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट और ब्रिटिश प्रधानमत्री चर्चिल की ओर से एक घोषणा प्रकाशित की गई। यह घोषणा 'एटलांटिक चार्टर' के नाम से प्रसिद्ध है। इस चार्टर में ८ सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया था। उनमें एक सिद्धांत यह भी था—"सब लोगों को यह अधिकार है कि वे स्वय इस बात का फैसला करें कि उनके

राज्यों की सरकार और शासन का स्वरूप किस प्रकार का हो।"

सन् १९४१ में ही राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने उन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जो 'चार स्वाधीनताओं' के नाम से प्रसिद्ध हैं:—१. ससार में सब-कहीं सब मनुष्यों को भाषण देने तथा किसी और प्रकार से अपने विचारों को प्रकट करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। २. संसार में सब कहीं सब मनुष्यों को यह स्वतंत्रता होनी चाहिए कि वे जैसे चाहें वैसे ईश्वर की पूजा और उपासना कर सकें। ३ संसार में सब कहीं सब राष्ट्रों को यह स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि वे शांति के स थ अपना आर्थिक जीवन बिता सके। ४. संसार में सब कहीं अस्त्र-शस्त्र व युद्ध-सामग्री की मात्रा में इस सीमा तक कमी कर देनी चाहिए कि किसी राज्य को दूसरे राज्य से आक्रमण का भय न रहे। ये सिद्धान्त निस्सन्देह बहुत ही उत्तम हैं और यदि इनके अनुसार संसार में व्यवस्था हो सके तो मानव-समाज को किसी तरह का भय ही न रहे।

इस प्रकार की भावना के कारण ही जब विश्व-युद्ध समाप्त होगया तब स्थायी शान्ति स्थापित करने और विविध राज्यों को एक सूत्र मे बांधने के उद्देश्य से, सयुक्त राष्ट्रसंघ (युनाइटेड नेशन्स आर्गनाइजेशन्स, यू० एन० ओ०) की स्थापना की गई। अक्तूबर सन् १९४४ मे अमेरिका के डम्बार्टन ओक्स नामक नगर में इस सम्बन्ध मे पहली कान्फ्रेंस हुई, जिसमें ब्रिटेन, रूस, अमेरिका और चीन के प्रतिनिधि शामिल हुए। इस कान्फ्रेंस में सयुक्त राष्ट्र-संघ की रूप-रेखा तैयार की गई। इसके बाद फरवरी ४५ में मित्र-राष्ट्रों की एक कान्फ्रेंस क्रीमिया के याल्टा नामक नगर में हुई। इस कान्फ्रेंस में भी इस संगठन पर विचार किया गया और यह निश्चय हुआ कि नये राष्ट्र संघ के सगठन तथा अन्य नियमों पर अन्तिम निर्णय करने के लिए सानफ्रांसिसको (अमेरिका) में एक कान्फ्रेंस बुलाई जाय, जिसमें सब मित्र-राष्ट्रों के प्रतिनिधि शामिल हों। यह कान्फ्रेंस

अप्रैल, १९४५ में हुई, जिसमें संयुक्त राष्ट्र-संघ का स्वरूप अंतिम रूप से स्वीकृत किया गया और इस प्रकार एक नये अन्तर्राष्ट्रीय सगठन की स्थापना हुई।

प्रारम्भ से ही लोगों ने इस बात का अनुभव कर लिया था कि मानव-अधिकार और बुनियादी स्वतत्रता की रक्षा किये बिना शान्ति की स्थापना नही हो सकती। इसीलिए जब सानफ्रांसिसको में विभिन्न देशों के प्रतिनिधि इकट्ठे हुए तो संसार के कोने-कोने से उनके पास इस आशय के ढेरों पत्र आये कि उन्हें मानव-अधिकारों की रक्षा के प्रति विशेष ध्यान देना चाहिए।

ऐसा ही हुआ। यह कान्फ्रेंस २५ अप्रैल से २६ जून, १९४५ तक हुई। डम्बार्टन ओक्स में चीन, रूस और अमेरिका के प्रतिनिधियों ने जो सिद्धान्त निर्धारित किये, उन्हीके आधार पर नई संस्था की रूपरेखा बनाई गई। २६ जून, १९४५ को सब प्रतिनिधियों ने एक चार्टर पर दस्तखत किये। इस चार्टर की ६ विभिन्न धाराओं में मानव-अधिकारों की रक्षा की चर्चा की गई है। पुराने राष्ट्रसंघ की असफलता से लाभ उठाकर इस नई संस्था को शक्तिशाली बनाने का पूरा प्रयत्न कि गया था। इस चार्टर में यह घोषणा की गई है—"हम संयुक्त राष्ट्रसंघ के लोग मानव के मूल अधिकारों में, मानव की गरिमा और महत्त्व में, और छोटे-बड़े सभी राष्ट्रों के नर-नारियों के समान अधिकारों में, आस्था को फिर से दोहराते हैं।" चार्टर की धारा एक में घोषित इसके चार उद्देश्यों में से एक है—"जाति, लिंग, भाषा अथवा धर्म के भेद-भाव के बिना मानव-अधिकारों और सबके लिए बुनियादी अधिकारों के प्रति सम्मान को बढ़ावा देना।" जब सब राष्ट्रों ने इस चार्टर को मान लिया तो २४ अक्तूबर १९४५ को संयुक्त राष्ट्रसंघ का जन्म हुआ।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रधान अंग है—१. जनरल असेम्बली या महासभा, २. सुरक्षा परिषद्, ३. अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय, ४. सरंक्षण परिषद् ५. आर्थिक व सामाजिक परिषद् और

६. प्रधान कार्यालय। इनमें से तीन—महासभा, आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् और संरक्षण-परिषद् – को चार्टर के अन्तर्गत मानव-अधिकारों से सम्बन्धित कुछ जिम्मेदारियां सौंपी गई हैं। परन्तु मानव-अधिकारों से जिस संस्था का सीधा सम्बन्ध है, वह है आर्थिक और सामाजिक परिषद्। इसके कार्यों में एक है, "मानव-अधिकारों और बुनियादी स्वतन्त्रताओं के प्रति सम्मान को बढ़ावा देना"। इसी कार्य या उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए इस परिषद् ने १९४६ के आरम्भ में "मानव-अधिकार आयोग' की स्थापना की। इस आयोग के १८ सदस्य थे और इनको मानव-अधिकारों की एक ऐसी घोषणा प्रस्तुत करनी थी, जिसको सब कहीं, सब लोग स्वीकार कर सकें। वैसे इसकी कार्य-सूची काफी बड़ी है। इसे इन मामलों के सम्बन्ध में अपनी तजवीजें, सिफारिशें तथा रिपोर्टें प्रस्तुत करने का आदेश है : (क) अधिकारों का एक अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञापन, (ख) नागरिक स्वतंत्रताओं पर अन्तर्राष्ट्रीय घोषणाएं अथवा अभिसन्धियां, समाज में स्त्रियों का स्थान, समाचारों की स्वतंत्रता तथा इसी प्रकार के दूसरे मामले, (ग) अल्पसंख्यकों की सुरक्षा, (घ) जाति, लिंग, भाषा अथवा धर्म के आधार पर भेद-भाव को रोकना, (ङ) उपरोक्त धारा के क, ख, ग, घ में बतलाई गई बातों के अतिरिक्त मानव-अधिकारों से सम्बन्धित कोई अन्य बात।

भेद-भाव को रोकने तथा अल्प-संख्यकों की सुरक्षा के लिए १९४६ में एक उप-आयोग भी बनाया गया। इसी समय संसार-भर में स्त्रियों के अधिकारों की अभिवृद्धि से सम्बन्धित विशेष समस्याओं पर विचार करने के लिए "समाज में स्त्रियों का स्थान" पर भी एक आयोग स्थापित किया गया।

'मानव-अधिकार आयोग' की पहली बैठक जनवरी १९४७ में हुई और इसने श्रीमती फ्रेंकलिन डी०रूजवेल्ट को अपना अध्यक्ष चुना। यह अमेरिका के स्वर्गीय राष्ट्रपति श्री रूजवेल्ट की पत्नी हैं। इनके अतिरिक्त चीन, फ्रांस, लेबनान, आस्ट्रेलिया, चिली, रूस

और ब्रिटेन के प्रतिनिधियों से मानव-अधिकारों का प्रारूप तैयार करने को कहा गया। लेक सक्सैस के कार्यालय में विधानों, वक्तव्यों और सुझावों का ढेर लग गया। इन्हीके आधार पर फ्रांस के

श्रीमती फ्रैंकलिन डी० रूजवेल्ट
जो 'मानव-अधिकार आयोग' की अध्यक्षा चुनी गई

प्रोफेसर रेने कैसी ने, जो आयोग के उपाध्यक्ष भी थे, एक प्रारूप तैयार किया। प्रस्तावना के अतिरिक्त इसमें ४४ धाराएं थीं। काफी विचार-विमर्श के बाद यह प्रारूप आयोग को भेज दिया गया। आयोग ने इसे सभी सदस्य राज्यों की राय जानने के लिए प्रचारित किया। बहुत लोगों ने, बहुत-सी संस्थाओं ने, जिनमें सरकारी और गैरसरकारी सभी थीं, उसपर विचार किया। समाचारों की स्वाधीनता तथा स्त्रियों के अधिकार-सम्बन्धी जो आयोग थे, उन्होंने भी इसपर अपनी राय प्रकट की। इन्हींके प्रकाश में आयोग ने इसपर फिर से विचार किया और फिर से प्रारूप तैयार किया। अब इसकी धाराएं ४४ से घट कर २८ रह गईं। इस प्रारूप को एक बार फिर सदस्य-राज्यों को भेजा गया। उसके बाद आर्थिक और सुरक्षा परिषद् को।

अन्त में १९४८ के पतझड़ में इसे महासभा में प्रस्तुत किया गया। वहां क्या हुआ, यह श्रीमती रूजवेल्ट के शब्दों में इस प्रकार है—"यह घोषणापत्र महासभा की तीसरी समिति (सामाजिक, मानवीय और सांस्कृतिक) की कार्य-सूची में शामिल किया गया था। जैसाकि आप जानते हैं महासभा की समितियों में संयुक्त राष्ट्रसंघ के ५८ राज्यों से एक-एक सदस्य होता है। सौभाग्य से लेबनान के डाक्टर मलिक, जो मानव-अधिकारों के आयोग के संयोजक थे, इस तीसरी समिति के अध्यक्ष थे। बहुत-से व्यक्ति वे थे, जो मानव-अधिकारों के आयोग के सदस्य भी थे। इसके अतिरिक्त बहुत-से ऐसे भी थे, जो न केवल मानव-अधिकारों के आयोग में थे, अपितु आर्थिक और सामाजिक परिषद् में भी थे। लेकिन ये बहुत थोड़े थे। दूसरे व्यक्तियों ने इस घोषणा को एक नितांत नये विचार के रूप में लिया। मानों उनमें से किसीने भी इसको पहले कभी नहीं देखा था।"

इसकी व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं। इस घोषणा-

पत्र पर विचार करने के लिए तीसरी समिति की ८५ बैठकें हुईं। इससे स्पष्ट है कि यह विषय कितना महत्त्वपूर्ण था। अंत में ७ दिसम्बर, १९४८ को यह स्वीकार कर लिया गया और उसके तीन दिन बाद १० दिसम्बर, १९४८ को राष्ट्र-संघ की महासभा ने पेरिस में 'पैल्यास दे शायलौत' में मानव-अधिकारों की विश्वव्यापी घोषणा स्वीकार की। वहांपर उपस्थित ५८ राष्ट्रों में से ४८ ने घोषणा के पक्ष में मत दिया। किसीने भी घोषणा के विरुद्ध मत नहीं दिया। आठ राष्ट्रों ने मतदान में भाग नहीं लिया। दो गैरहाजिर थे। इस प्रकार मानव-अधिकारों की प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय घोषणा के विरुद्ध एक भी वोट नहीं पड़ा और वह स्वीकार कर ली गई। संयुक्त राष्ट्र-सघ के सदस्यों ने सब लोगों तथा सब राष्ट्रों के लिए सफलता के एक समान मापदण्ड की घोषणा की, ताकि प्रत्येक मनुष्य और समाज का प्रत्येक अंग इस घोषणा को सदा अपने मन में रखते हुए इन अधिकारों तथा स्वतंत्रताओं के प्रति आदर की अभिवृद्धि के लिए काम कर सके और उनके अनुसार चलने के लिए भरसक प्रयत्न करे।

संयुक्त राष्ट्र-संघ ने अबतक कितनी सफलता प्राप्त की या बिल्कुल नहीं की, इसपर विवाद हो सकता है; लेकिन एक बात स्पष्ट है कि संयुक्त राष्ट्र-सघ की स्थापना इस बात का परिणाम नहीं थी कि राजनीति के लोग अधिक शांतिप्रिय बन गये थे और न इस बात की कि विश्व की विभिन्न जातियां और राष्ट्र अचानक उन नैतिक सिद्धातों के प्रति अधिक सम्मान महसूस करने लगे जो कि उन्हें एक-दूसरे से सम्बद्ध करते हैं। मुख्य रूप से राष्ट्र-संघ का घोषणापत्र प्रचलित भौतिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक और दूसरी परिस्थितियों के कारण मानवता के लिए शांतिपूर्ण सहयोग की अधिक आवश्यकता का ही परिणाम है। वस्तुतः संयुक्त राष्ट्र-संघ एक साधन है, जिसका सच्चाई और ईमानदारी के साथ शांति के लिए काम करने वाले हरेक इन्सान को उपयोग करना चाहिए। यह राज्यों के

हाथ में एक ऐसा औजार है, जो शांतिपूर्वक समझौतों की चर्चा और रचनात्मक सहयोग द्वारा संघर्षों को रोकने और उनका निर्णय करने के लिए आवश्यक है। पिछले १५ वर्षों में संघ बहुत-से कामों में सफल भी हुआ, असफल भी हुआ। लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि भय और घृणा, विनाश और विकृति की शक्तियों के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र-संघ ने पूरी शक्ति के साथ काम किया है। उसने इस बात का अनुभव कर लिया कि स्थायी शांति के लिए व्यक्ति के अधिकार की रक्षा अनिवार्य है। वह राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक प्रगति के लिए भी अनिवार्य है। उसने यह भी सीख लिया कि मानवाधिकारों की अवहेलना का अर्थ अत्याचार को आमंत्रित करना है, जिसका अन्त युद्ध में ही हो सकता है।

मानव-अधिकारों की यह घोषणा इसी ज्ञान का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस घोषणा का मूल पाठ इस प्रकार है :

प्रस्तावना

चूंकि मानव-परिवार के सभी सदस्यों के जन्मजात गौरव और समान तथा अविच्छिन्न अधिकार की स्वीकृति ही विश्व-शांति, न्याय और स्वतन्त्रता की बुनियाद है ;

चूंकि मानव-अधिकारों के प्रति उपेक्षा और घृणा के फल-स्वरूप ही ऐसे बर्बर कार्य हुए, जिनसे मनुष्य की आत्मा पर अत्याचार किया गया, चूंकि एक ऐसी विश्व-व्यवस्था की उस स्थापना को (जिसमें लोगों को भाषण और धर्म की आजादी तथा भय और अभाव से मुक्ति मिलेगी) सर्वसाधारण के लिए सर्वोच्च आकांक्षा घोषित किया गया है;

चूंकि अगर अन्याययुक्त शासन और जुल्म के विरुद्ध लोगों को विद्रोह करने के लिए—उसे ही अंतिम उपाय समझकर—मजबूर नहीं हो जाना है तो कानून द्वारा नियम बनाकर मानव-अधिकारों की रक्षा करना अनिवार्य है;

चूंकि राष्ट्रों के बीच मैत्रीपूर्ण संबधों को बढ़ाना जरूरी है;

चूंकि संयुक्त राष्ट्रों के सदस्य देशों की जनताओं ने बुनियादी मानव-अधिकारों में, मानव-व्यक्तित्व के गौरव और योग्यता में और नर-नारियों के समान अधिकारों में अपने विश्वास को अधिकार-पत्र में दुहराया है और यह निश्चय किया है कि अधिक व्यापक स्वतंत्रता के अंतर्गत सामाजिक प्रगति एवं जीवन के बेहतर स्तर को ऊंचा किया जाय;

चूंकि सदस्य देशों ने यह प्रतिज्ञा की है कि वे संयुक्त राष्ट्रों के सहयोग से मानव-अधिकारों और बुनियादी आज़ादियों के प्रति सार्वभौम सम्मान की वृद्धि करेंगे ;

चूंकि इस प्रतिज्ञा को पूरी तरह से निभाने के लिए इन अधिकारों और आजादियों का स्वरूप ठीक-ठीक समझना सबसे अधिक जरूरी है । इसलिए, अब

'सामान्य सभा' घोषित करती है कि—

मानव-अधिकारों की यह सार्वभौम घोषणा सभी देशों और सभी लोगों की समान सफलता है । इसका उद्देश्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति और समाज का प्रत्येक भाग इस घोषणा को लगातार दृष्टि में रखते हुए अध्यापन और शिक्षा द्वारा यह प्रयत्न करेगा कि इन अधिकारों और आजादियों के प्रति सम्मान की भावना जाग्रत हो और उत्तरोत्तर ऐसे राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय उपाय किये जाय, जिनसे सदस्य देशों की जनता तथा उनके द्वारा अधिकृत प्रदेशों की जनता इन अधिकारों की सार्वभौम और प्रभावोत्पादक स्वीकृति दे और उनका पालन करावे ।

अनुच्छेद १—सभी मनुष्यों को गौरव और अधिकारों के में जन्मजात स्वतंत्रता और समानता प्राप्त है । उन्हें बुद्धि और अंतरात्मा की देन प्राप्त है और परस्पर उन्हें भाईचारे के भाव से बर्ताव करना चाहिए ।

अनुच्छेद २—सभीको इस घोषणा में सन्निहित सभी अधिकारों और आजादियों को प्राप्त करने का हक है और इस मामले में जाति, वर्ण, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीति या अन्य

विचार-प्रणाली, किसी देश या समाज-विशेष में जन्म, संपत्ति या किसी प्रकार की अन्य मर्यादा आदि के कारण भेदभाव का विचार न किया जायगा।

इसके अतिरिक्त, चाहे कोई देश या प्रदेश स्वतंत्र हो, संरक्षित या स्वशासन-रहित हो या परिमित प्रभुसत्तावाला हो, उस देश या प्रदेश की राजनैतिक, क्षेत्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के आधार पर वहा के निवासियों के प्रति कोई भेद न रखा जायगा।

अनुच्छेद ३—प्रत्येक व्यक्ति को जीवन, स्वाधीनता और वैयक्तिक सुरक्षा का अधिकार है।

अनुच्छेद ४—कोई भी गुलामी या दासता की हालत में नहीं रखा जायगा। गुलामी की प्रथा और गुलामों का व्यापार अपने सभी रूपों में निषिद्ध होगा।

अनुच्छेद ५—किसीको भी शारीरिक यातना न दी जायगी और न किसीके भी प्रति निर्दय, अमानुषिक या अपमानजनक व्यवहार होगा।

अनुच्छेद ६—हर किसीको, हर जगह कानून की निगाह में व्यक्ति के रूप में स्वीकृति-प्राप्ति का अधिकार है।

अनुच्छेद ७—कानून की निगाह में सभी समान हैं और सभी बिना भेदभाव के समान कानूनी सुरक्षा के अधिकारी है। यदि इस घोषणा का अतिक्रमण करके कोई भी भेद-भाव किया जाय या उस प्रकार के भेद-भाव को किसी प्रकार से उकसाया जाय तो उसके विरुद्ध समान सरक्षण का अधिकार सभीको प्राप्त है।

अनुच्छेद ८—सभीको संविधान या कानून द्वारा प्राप्त बुनियादी अधिकारों का अतिक्रमण करनेवाले कार्यो के विरुद्ध समुचित राष्ट्रीय अदालतों की कारगर सहायता पाने का हक है।

अनुच्छेद ९—किसीको भी मनमाने ढंग से गिरफ्तार, नजरबंद या देश-निष्कासित न किया जायगा।

अनुच्छेद १०—सभीको पूर्णतः समान रूप से हक है कि

उनके अधिकारों और कर्त्तव्यों के निश्चय करने के मामले में और उनपर आरोपित फौजदारी के किसी मामले में उनकी सुनवाई न्यायोचित और सार्वजनिक रूप से निरपेक्ष एवं निष्पक्ष अदालत द्वारा हो।

अनुच्छेद ११—(१) प्रत्येक व्यक्ति, जिसपर दण्डनीय अपराध का आरोप किया गया हो, तबतक निरपराध माना जायगा, जबतक उसे ऐसी खुली अदालत में, जहां उसे अपनी सफाई की सभी आवश्यक सुविधाएं प्राप्त हों, कानून के अनुसार अपराधी सिद्ध न कर दिया जाय। (२) कोई भी व्यक्ति किसी भी ऐसे कृत या अकृत (अपराध) के कारण उस दण्डनीय अपराध का अपराधी न माना जायगा, जिसे तत्कालीन प्रचलित राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार दण्डनीय अपराध न माना जाय और न उससे अधिक भारी दण्ड दिया जा सकेगा, जो उस समय दिया जाता, जिस समय वह दण्डनीय अपराध किया गया था।

अनुच्छेद १२—किसी व्यक्ति की एकान्तता, परिवार, घर या पत्र-व्यवहार के प्रति कोई मनमाना हस्तक्षेप न किया जायगा; न किसीके सम्मान और ख्याति पर कोई आक्षेप हो सकेगा। ऐसे हस्तक्षेप या आक्षेपों के विरुद्ध प्रत्येक को कानूनी रक्षा का अधिकार प्राप्त है।

अनुच्छेद १३—(१) प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक देश की सीमाओं के अंदर स्वतन्त्रतापूर्वक आने, जाने और बसने का अधिकार है। (२) प्रत्येक व्यक्ति को अपने या पराये किसी भी देश को छोड़ने और अपने देश को वापस आने का अधिकार है।

अनुच्छेद १४—(१) प्रत्येक व्यक्ति को सताये जाने पर दूसरे देशों में शरण लेने और रहने का अधिकार है (२) इस अधिकार का लाभ ऐसे मामलों में नहीं मिलेगा जो वास्तव में गैरराजनैतिक अपराधों से संबंधित हैं या जो संयुक्त राष्ट्रों के उद्देश्यों और सिद्धांतों के विरुद्ध कार्य हैं।

अनुच्छेद १५—(१) प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी राष्ट्र-विशेष की नागरिकता का अधिकार है। (२) किसीको भी मनमाने ढंग से अपने राष्ट्र की नागरिकता से वंचित न किया जायगा या नागरिकता का परिवर्तन करने से मना न किया जायगा।

अनुच्छेद १६—(१) बालिग स्त्री-पुरुषों को बिना किसी जाति, राष्ट्रीयता या धर्म की रुकावटों के, आपस में विवाह करने और परिवार को स्थापन करने का अधिकार है। उन्हें विवाह के विषय में वैवाहिक जीवन में, तथा विवाह-विच्छेद के बारे में समान अधिकार है। (२) विवाह का इरादा रखने-वाले स्त्री-पुरुषों की पूर्ण और स्वतंत्र सहमति पर ही विवाह हो सकेगा। (३) परिवार समाज की स्वाभाविक और बुनियादी सामूहिक इकाई है और उसे समाज तथा राज्य द्वारा संरक्षण पाने का अधिकार है।

अनुच्छेद १७—(१) प्रत्येक व्यक्ति को अकेले और दूसरों के साथ मिलकर सम्मति रखने का अधिकार है। (२) किसी-को भी मनमाने ढंग से अपनी सम्मति से वंचित न किया जायगा।

अनुच्छेद १८— प्रत्येक व्यक्ति को विचार, अंतरात्मा और धर्म की आजादी का अधिकार है। इस अधिकार के अंतर्गत अपना धर्म या विश्वास बदलने और अकेले या दूसरों के साथ मिलकर तथा सार्वजनिक रूप में अथवा निजी तौर पर अपने धर्म या विश्वास को शिक्षा, क्रिया, उपासना, तथा व्यवहार के द्वारा प्रकट करने की स्वतंत्रता है।

अनुच्छेद १९—प्रत्येक व्यक्ति को विचार और उसकी अभि-व्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार है। इसके अंतर्गत बिना हस्तक्षेप के कोई राय रखना और किसी भी माध्यम के ज़रिए तथा सीमाओं की परवाह करके किसी भी सूचना और धारणा का अन्वेषण, ग्रहण तथा प्रदान सम्मिलित है।

अनुच्छेद २०—(१) प्रत्येक व्यक्ति को शांतिपूर्ण सभा करने या समिति बनाने की स्वतंत्रता का अधिकार है। (२) किसी-को भी किसी संस्था का सदस्य बनने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता।

अनुच्छेद २१—(१) प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश के शासन में प्रत्यक्ष रूप से या स्वतंत्र रूप से चुने गये प्रतिनिधियों के जरिये हिस्सा लेने का अधिकार है। (२) प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश की सरकारी नौकरियों को प्राप्त करने का समान अधिकार है। (३) सरकार की सत्ता का आधार जनता की इच्छा होगी। इस इच्छा का प्रकटन समय-समय पर और असली चुनावों द्वारा होगा। ये चुनाव सार्वभौम और समान मताधि-कार द्वारा होंगे और गुप्त मतदान द्वारा या किसी अन्य समान स्वतंत्र मतदान पद्धति से कराये जायेंगे।

अनुच्छेद २२—समाज के एक सदस्य के रूप में प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा का अधिकार है और प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के उस स्वतंत्र विकास तथा गौरव के लिए—जो राष्ट्रीय प्रयत्न या अंतर्राष्ट्रीय सहयोग तथा प्रत्येक राज्य के संगठन एवं साधनों के अनुकूल हो—अनिवार्यतः आवश्यक आर्थिक, सामाजिक, और सांस्कृतिक अधिकारों की प्राप्ति का हक है।

अनुच्छेद २३—(१) प्रत्येक व्यक्ति को काम करने, इच्छा-नुसार रोजगार के चुनाव, काम की उचित और सुविधाजनक परिस्थितियों को प्राप्त करने और बेकारी से संरक्षण पाने का हक है। (२) प्रत्येक व्यक्ति को समान कार्य के लिए बिना किसी भेदभाव के समान मजदूरी पाने का अधिकार है। (३) प्रत्येक व्यक्ति को, जो काम करता है, अधिकार है कि वह इतनी उचित और अनुकूल मजदूरी पाये, जिससे वह अपने लिए और अपने परिवार के लिए ऐसी आजीविका का प्रबंध कर सके, जो मानवीय गौरव के योग्य हो तथा आवश्यकता

होने पर उसकी पूर्ति अन्य प्रकार के सामाजिक संरक्षणों द्वारा हो सके। (४) प्रत्येक व्यक्ति को अपने हितों की रक्षा के लिए श्रीमजीवी संघ बनाने और उनमें भाग लेने का अधिकार है।

अनुच्छेद २४—प्रत्येक व्यक्ति को विश्राम और अवकाश का अधिकार है। इसके अंतर्गत काम के घंटों की उचित हद-बंदी और समय-समय पर मजदूरी-सहित छुट्टियां सम्मिलित हैं।

अनुच्छेद २५—(१) प्रत्येक व्यक्ति को ऐसे जीवन-स्तर को प्राप्त करने का अधिकार है जो उसे और उसके परिवार के स्वास्थ्य एवं कल्याण के लिए पर्याप्त हो। इसके अंतर्गत खाना, कपड़ा, मकान, चिकित्सा-संबंधित सुविधाएं और आवश्यक सामाजिक सेवाएं सम्मिलित हैं। सभीको बेकारी, बीमारी, असमर्थता, वैधव्य, बुढ़ापा या अन्य किसी ऐसी परिस्थिति में आजीविका का साधन न होने पर, जो उसके काबू के बाहर हो, सुरक्षा का अधिकार प्राप्त है। (२) जच्चा और बच्चा को खास सहायता और सुविधा का हक है। प्रत्येक बच्चे को, चाहे वह विवाहित माता से जन्मा हो या अविवाहित से, समान सामाजिक संरक्षण प्राप्त होगा।

अनुच्छेद २६—(१) प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा का अधिकार है। शिक्षा कम-से-कम प्रारंभिक और बुनियादी अवस्थाओं में निःशुल्क होगी। प्रारंभिक शिक्षा अनिवार्य होगी। टेक्निकल, यांत्रिक और पेशों-संबंधी शिक्षा साधारण रूप से प्राप्त होगी और उच्चतर शिक्षा सभीको योग्यता के आधार पर समान रूप से उपलब्ध होगी। (२) शिक्षा का उद्देश्य होगा मानव-व्यक्तित्व का पूर्ण विकास और मानव-अधिकारों तथा बुनियादी स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान की पुष्टि। शिक्षा द्वारा राष्ट्रों, जातियों अथवा धार्मिक समूहों के बीच आपसी सद्भावना, सहिष्णुता और मैत्री के प्रयत्नों का विकास होगा और शांति बनाये रखने के लिए संयुक्त राष्ट्रों को आगे बढ़ाया जायगा। (३) माता-पिता को सबसे पहले इस बात का अधिकार है कि वे चुनाव कर सकें कि

किस किस्म की शिक्षा उनके बच्चों को दी जायगी।

अनुच्छेद २७—(१) प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्रतापूर्वक समाज के सांस्कृतिक जीवन में हिस्सा लेने, कलाओं का आनन्द लेने तथा वैज्ञानिक उन्नति और उसकी सुविधाओं में भाग लेने का अधिकार है। (२) प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी ऐसी वैज्ञानिक, साहित्यिक या कलात्मक कृति से उत्पन्न नैतिक और आर्थिक हितों की रक्षा का अधिकार है, जिसका रचयिता वह स्वयं हो।

अनुच्छेद २८—प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी सामाजिक और अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था की प्राप्ति का अधिकार है जिसमें इस घोषणा में उल्लिखित अधिकारों और स्वतंत्रताओं को पूर्णतः प्राप्त किया जा सके।

अनुच्छेद २९—(१) प्रत्येक व्यक्ति का उसी समाज के प्रति कर्त्तव्य है जिसमें रहकर उसके व्यक्तित्व का स्वतंत्र और पूर्ण विकास सभव हो। (२) अपने अधिकारों और स्वतत्रताओं का उपयोग करते हुए प्रत्येक व्यक्ति केवल ऐसी ही सीमाओं द्वारा बद्ध होगा, जो कानून द्वारा निश्चित की जायेंगीं और जिनका एकमात्र उद्देश्य दूसरों के अधिकारों और स्वतंत्रताओं के लिए आदर और समुचित स्वीकृति की प्राप्ति होगा तथा जिनकी आवश्यकता एक प्रजातन्त्रात्मक समाज में नैतिकता, सार्वजनिक व्यवस्था और सामान्य कल्याण की उचित आवश्यकताओं को पूरा करना होगा। (३) इन अधिकारों और स्वतंत्रताओं का उपयोग किसी प्रकार से भी सयुक्त राष्ट्रों के सिद्धांतों और उद्देश्यों के विरुद्ध नहीं किया जायगा।

अनुच्छेद ३०—इस घोषणा में उल्लिखित किसी भी बात का यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए जिससे यह प्रतीत हो कि किसी भी राज्य, समूह, या व्यक्ति को किसी ऐसे प्रयत्न में संलग्न होने या ऐसा कार्य करने का अधिकार है, जिसका उद्देश्य यहां बताये गए अधिकारों और स्वतंत्रताओं में से किसीका भी विनाश करना हो।

मानव-अधिकारों की यह घोषणा विश्व के इतिहास में, मनुष्य ने अधिकारों के लिए जो संघर्ष किया है, उसकी चरम परिणति है। लेकिन जैसाकि हम देख चुके हैं, इसका निर्माण आसानी से नहीं हो सका है। इस घोषणा में जिन शब्दों का प्रयोग हुआ है उनके चयन में जो कठिनाई आई है, हम उसकी ओर संकेत करना चाहते हैं। यह अनोखी बात है, लेकिन है सत्य। सभी राष्ट्र मानव-अधिकारों का समर्थन करने के लिए सहमत होगये थे, लेकिन इन 'दो शब्दों' का अर्थ क्या है इसके बारे में सबके मन में अलग-अलग तस्वीर थी। उन्होंने समझौते का प्रयत्न किया, लेकिन प्रत्येक राष्ट्र की अपनी परंपराएं होती हैं, अपने रीति-रिवाज होते हैं। इस दृष्टि से किसी एक शब्द या वाक्य के अर्थ सबके लिए अलग-अलग हो सकते थे। यह आवश्यक नहीं था कि एक शब्द का अर्थ जो भारत करता था, वही इंगलैंड भी करे। विश्व के एक प्रदेश के मनुष्यों को जो स्वतंत्रता प्राप्त है, दूसरे देशवाले उस स्वतंत्रता को बुरा समझते हैं।

इसलिए प्रारूप में प्रयोग किये जाने वाले प्रत्येक शब्द पर पूरी तरह से विचार किया गया और उसके जो भी अर्थ हो सकते हैं, उनपर चर्चा की गई। तब कहीं जाकर उसका प्रयोग किया गया। शिक्षा के संबंध में जो धारा है उसमें बाद में ये वाक्य जोड़े गये—'माता-पिता को सबसे पहले इस बात का अधिकार है कि वे चुनाव कर सकें कि किस किस्म की शिक्षा उनके बच्चों को दी जायगी।' पूछा जा सकता है कि ऐसा क्यों किया गया? नीदरलैंड के प्रतिनिधि ने इस धारा पर विचार करते समय समिति का ध्यान हिटलर के युवक-आन्दोलन की ओर दिलाया था। नाजी शासन में बच्चों को जातीय घृणा और युद्ध की प्रशंसा का पाठ पढ़ाया जाता था। जब उनके माता-पिता ने उन्हें इसके विरुद्ध सीख देने का प्रयत्न किया तो उन बच्चों ने अपने माता-पिता के विरुद्ध शिकायत की। हमारे अपने देश में भी एक ऐसी संस्था है, जिसके प्रभाव में आकर बच्चे माता-

पिता की अवहेलना करते रहे हैं। ऐसा फिर हो, इस बात का प्रयत्न उपर्युक्त धारा जोड़कर किया गया है।

यह एक उदाहरण-मात्र है। इस प्रकार की बहुत-सी कठिनाइयां आयोग के सामने थीं। तभी तो इस घोषणा-पत्र को तैयार करने में दो वर्ष लगे। अब यह अधिक-से-अधिक सहमति-प्राप्त मानव-अधिकारों का एक सीधा-सादा घोषणा-पत्र है। हमने इसे 'सीधा-सादा' कहा है, लेकिन वास्तव में यह मानव-जाति के इतिहास में नये समाज की स्थापना का दुन्दुभि-नाद है।

: ५ :

घोषणा की व्याख्या

इस घोषणा-पत्र में जिन अधिकारों को स्वीकार किया गया है, मोटे तौरपर वे दो प्रकार के हैं—(१) व्यक्तिगत, नागरिक और राजनैतिक अधिकार (अनुच्छेद ३ से २१ तक), (२) आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार (अनुच्छेद २२ से २७ तक)। इसके अतिरिक्त पहले अनुच्छेद में कुछ आधारभूत सिद्धांतों को सामने रखा गया है। इनके अनुसार 'सभी मनुष्यों को गौरव और अधिकारों के मामलों में जन्मजात स्वतंत्रता, समानता, बुद्धि और अंतरात्मा की देन प्राप्त है और परस्पर उन्हें भाई-चारे के भाव से बर्ताव करना चाहिए।' ऐसा जान पड़ता कि इस अनुच्छेद का आधार दो धारणाएं हैं (१) आजादी और समानता का अधिकार मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है (२) मनुष्य विचारवान् नैतिक प्राणी है और यही संसार के दूसरे जीवों मे उसकी विशेषता को प्रकट करना है। भारत इन दोनों धारणाओं का सदा से पक्षपाती रहा है। स्वतंत्रता-संग्राम के समय पहली धारणा के कारण ही लोकमान्य तिलक ने यह नारा लगाया था, "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, हम उसे लेकर रहेंगे।" गांधीजी तो आजादी के प्रति इतने सजग थे कि उन्होंने कहा "किसीकी महरबानी मागना अपनी आजादी खोना है।" इसी तरह दूसरी धारणा के संबंध में इस देश के नीतिज्ञों ने बहुत पहले ही कहा था "आहार, निद्रा, भय और मैथुन ये सब प्राणियों में समान हैं, लेकिन मनुष्य में ज्ञान की विशेषता है। यही ज्ञान उसको दूसरे प्राणियो से अलग करता है।" गीता ने ज्ञान के संबंध में कहा है—"जहां पूर्ण ज्ञान और उसका अनुसरण करनेवाली क्रिया है, वहां नीति, विजय,

लक्ष्मी और अखण्ड वैभव है।" तमाम कार्यों की परिसमाप्ति ज्ञान में होती है।

इस दृष्टि से यह अधिकार इस घोषणा-पत्र का हृदय है। इस अधिकार के पीछे जो भावना है, उसी भावना ने युग-युग में समस्त विश्व के मनीषियों के भीतर ज्ञान की ज्योति जगाई थी। इसी भावना के कारण अधकार-कालीन ससार में भी ज्ञान की यह ज्योति मानव का मार्ग प्रदर्शन करती रही।

घोषणा का दूसरा अनुच्छेद मानव-मात्र को जाति, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, राजनैतिक या अन्य विचारधारा, राष्ट्रीय या सामाजिक स्थिति, सपत्ति, जन्म और दूसरे आधार पर बिना किसी भेदभाव के घोषणापत्र में निहित अधिकारों और स्वतंत्रताओं का अधिकार देता है। यह घोषणा-पत्र में निहित उस व्यवस्था का स्पष्टीकरण है जिसके अनुसार राष्ट्र-संघ को जाति, लिंग, भाषा अथवा धर्म के आधार पर बिना भेदभाव के सबके लिए मानव-अधिकार व बुनियादी स्वतत्रताओं को बढ़ावा देना चाहिए। इस अनुच्छेद मे यह भी कहा गया है कि किसी भी देश या प्रदेश के, वह चाहे आश्रित, संरक्षित अथवा स्व-मुख्तार हो, किसी भी व्यक्ति के साथ उन बातों के आधार पर कोई भी भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए। संक्षेप में, इसको इस प्रकार कह सकते हैं कि सभी देशों और प्रदेशों के लोग बिना किसी भेदभाव के समान हैं तथा घोषणापत्र में बताये गए सभी अधिकारों के हकदार है।

व्यक्तिगत नागरिक और राजनैतिक अधिकार

अनुच्छेद ३ के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को 'जीवन, स्वतंत्रता और सुरक्षा का अधिकार है।' यह बुनियादी अधिकार है और इससे कोई भी इन्कार नही कर सकता। जब हम इसे स्वीकार कर लेते हैं तो किसीको गुलामी या दासता में रखने का प्रश्न ही नहीं उठता। किसीके साथ निर्दय, अमानुषिक या अपमान-जनक व्यवहार कैसे किया जा सकता है? यह स्पष्ट है कि

दासता या आश्रय का कोई रूप मानव के मौलिक अधिकारों को नष्ट किये बिना नहीं रह सकता। गुलामी में रहना इन्सान

दासता में पिसनेवाले नीग्रो

की शान के खिलाफ है। गुलामी से मुक्ति पाने के लिए संसार के असंख्य व्यक्तियों ने प्राणों का मोह नहीं किया। गांधीजी ने कहा, "जो भी व्यक्ति हृदय से प्रार्थना करता है, वह कभी भी गुलामी को स्वीकार नहीं कर सकता।" उन्हींके नेतृत्व में भारत ने अंतिम रूप से गुलामी पर चोट की। इसलिए भारत इस अनुच्छेद का महत्त्व बहुत अच्छी तरह समझता है। इस

अनुच्छेद पर विचार करते समय राष्ट्रपति लिंकन का ध्यान हो आना भी स्वाभाविक है। अमरीका में दासता का अंत करते हुए उन्होंने अपने प्राणों की आहुति दे दी थी। उनका यह वाक्य "चूंकि मैं दास बनना नहीं चाहूंगा, इसलिए स्वामी बनना भी नही चाहूंगा।" स्वाधीनता के दीवानों के लिए एक मंत्र बन गया है।

अनुच्छेद ३ में इसी मत्र की व्याख्या है और अनुच्छेद ४ और ५ का सबध भी इन्ही अधिकारों से है।

मनुष्य की सुरक्षा की व्यवस्था आजकल राज्यों के द्वारा बनाये गए कानूनो से होती है। इसलिए यह आवश्यक है कि सभी मनुष्य कानून के सामने बराबर समझे जाय और समान रूप से कानूनी सुरक्षा का उपभोग कर सके। यदि किसीके बुनियादी अधिकारों का उल्लघन या अतिक्रमण होता हो तो उसे उसके विरुद्ध कानून की सहायता लेने का अधिकार भी होना चाहिए। अनुच्छेद ६, ७ और ८ में इन्ही अधिकारों की सुरक्षा की व्यवस्था की गई है।

सूर्य बिना किसी भेदभाव के ससार की सभी अच्छी और बुरी वस्तुओं पर अपना प्रकाश डालता है, बादल और वायु भी किसी प्रकार का भेदभाव नही करते। तब मनुष्य ही ऐसा क्यों करे? इस घोषणापत्र में इसीलिए निर्दोष और अपराधी दोनों की समान रूप से रक्षा करने का प्रयत्न किया गया है। अनुच्छेद ९ के अनुसार किसीकी भी निरंकुश गिरफ्तारी नहीं की जायगी, उसे निरकुश रूप से बंदी अथवा निर्वासित नहीं किया जायगा। अनुच्छेद १० के अनुसार हरेक को उचित सार्वजनिक मुकदमे का अधिकार है। अनुच्छेद ११ के अनुसार किसी भी व्यक्ति को तबतक निरपराध माना जायगा जबतक उसे ऐसी खुली अदालत में, जहां उसे अपनी सफाई की सभी आवश्यक सुविधाएं सुलभ हों, कानून के अनुसार अपराधी न सिद्ध कर दिया जाय। वस्तुतः, यदि अपराधी के अधिकारों की

रक्षा न की जाय तो निर्दोषों के अधिकार भी खटाई में पड़ सकते हैं। फौजदारी कानून का यह आधारभूत सिद्धांत है—"अपराधी और निर्दोष दोनों के अधिकारों की सुरक्षा आवश्यक है।" इस दृष्टि से कह सकते हैं कि मानव-अधिकारों का यह घोषणापत्र एक सार्वलौकिक 'मैग्ना कार्टा' है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। परंतु उसके जीवन के दो पहलू हैं। एक पहलू का संबंध समाज से है, दूसरे का स्वयं अपने से है। कोई भी व्यक्ति अपनी गोपनीयता, एकांतता और घर के दूसरे निजी मामलों में बाहरी हस्तक्षेप पसन्द नहीं कर सकता। इस अधिकार की रक्षा होनी ही चाहिए। अनुच्छेद १२ में मनुष्य की उसी सुरक्षा का वचन दिया गया है। घर की पवित्रता, पत्र-व्यवहार की गोपनीयता, व्यक्ति के सम्मान और ख्याति को सुरक्षित किया गया है।

इतिहास ऐसी घटनाओं से भरा पड़ा है जब तानाशाहों और अत्याचारी शासकों ने मनुष्यों को भयकर यातनाएं दीं और उन्हें अपनी जन्मभूमि-मातृभूमि से भागकर दूसरे देशों में शरण लेनी पड़ी। आज भी ऐसे अनेक अभागे दर-दर की ठोकरें खाते फिर रहे हैं। राष्ट्र-संघ उनकी समस्या पूरी तरह से नहीं सुलझा सका है। कई देश ऐसे शरणार्थियों को शरण तक नहीं देते। इसी स्थिति को ध्यान में रखते हुए इस घोषणा-पत्र में एक नई व्यवस्था की गई है। जहां अनुच्छेद १३ लोगों को अपने देश की सीमा के अंदर स्वतंत्रतापूर्वक आने-जाने और बसने के अधिकार के साथ-साथ अपने या पराये देश को छोड़ने और स्वदेश वापस आने का अधिकार देता है वहां अनुच्छेद १४, और भी आगे बढ़कर, प्रत्येक व्यक्ति को सताये जाने पर दूसरे देशों में शरण लेने और रहने का अधिकार भी देता है। लेकिन इस अनुच्छेद में यह नहीं कहा गया है कि हरेक का यह अधिकार है कि उसे शरण दी जाय, क्योंकि शरण देना राज्य का अपना ही अधिकार है। इस अनुच्छेद में

यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि इस अधिकार का लाभ ऐसे मामलों में नहीं मिलेगा जो वास्तव में गैर-राजनैतिक अपराधों से सबधित हैं या जो संयुक्त राष्ट्र-संघ के उद्देश्य और सिद्धांतों के विरुद्ध हैं।

इस समय राज्य-विहीनता एक गम्भीर समस्या बन गई है। अंतर्राष्ट्रीय कानूनी व्यवस्था मे यह एक विरोधाभास है। एक राज्य-विहीन व्यक्ति को किसी भी राज्य की सुरक्षा प्राप्त नहीं है। और उस देश में, जहां भी वह रहता है, उसे अनेक अधिकारों से वचित रखा जाता है। अनुच्छेद १५ हरेक व्यक्ति को केवल राष्ट्रीयता का ही अधिकार नहीं देता, बल्कि निरंकुश रूप से राष्ट्रीयता के छीने जाने पर उसे सुरक्षा और राष्ट्रीयता बदलने की छूट भी देता है।

परिवार कितना प्यारा शब्द है। वह समाज की प्राकृतिक और बुनियादी इकाई है। और उसका आधार है 'विवाह'। अनुच्छेद १६ में इसी सत्य को स्वीकार किया गया है। पुरुषों और स्त्रियों को पूर्ण और स्वतंत्र सहमति के आधार पर बिना किसी जाति, राष्ट्रीयता अथवा धर्म के भेदभाव के विवाह करने का अधिकार है। परिवार बसाने का भी अधिकार है। विवाह करने, वैवाहिक जीवन बिताने और विवाह-विच्छेद करने में स्त्री-पुरुष दोनों को समान अधिकार हैं। युग-युग से विश्व के सभी दशों में इस प्रश्न को लेकर विरोधी व्यवस्थाएं दी गई हैं। स्त्रियों को विशेष रूप से इस व्यवस्था से दारुण कष्ट उठाने पड़े हैं। यह अनुच्छेद उसी व्यवस्था का अंत करता है।

सपत्ति की मालिकयत का अधिकार आज के युग का सबसे अधिक विवादग्रस्त मसला है। अनुच्छेद १७ में इसी जटिल समस्या का हल निकालने का प्रयत्न है। इसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अकेले और दूसरों के साथ मिलकर संपत्ति रखने का अधिकार है। किसीको भी मनमाने ढंग से अपनी संपत्ति से वंचित नहीं किया जायगा।

अनुच्छेद १८ और १९ का कई कारणों से विशेष महत्त्व है। इनका संबंध मनुष्य की विचार और धर्म-संबंधी स्वतंत्रता से है। कह सकते हैं कि यह एक पवित्र अनुच्छेद है। कोई भी तानाशाह किसी भी व्यक्ति के आध्यात्मिक साम्राज्य पर धावा नहीं कर सकता। कोई भी व्यक्ति अपना धर्म या विश्वास बदल सकता है। अकेले अथवा सार्वजनिक रूप से उसे शिक्षा, क्रिया, उपासना तथा व्यवहार द्वारा प्रकट कर सकता है। धर्म-परिवर्तन को लेकर ससार में जितने अत्याचार हुए, निर्दोष मानवों का जितना रक्त वहाया गया है, इस अनुच्छेद द्वारा संयुक्त राष्ट्र-सघ मानो उसीका प्रायश्चित्त कर रहा है। अनुच्छेद १९ में प्रत्येक व्यक्ति को विचार और उसकी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार दिया गया है। इस अधिकार की परिधि और व्याख्या करते हुए लिखा है—'बिना हस्तक्षेप के कोई राय रखना और किसी भी माध्यम के जरिए से तथा सीमाओं की परवाह न करके किसीकी सूचना और धारणा का अन्वेषण, ग्रहण और प्रदान करने की स्वतंत्रता है।' सूचना की स्वतंत्रता इतनी महत्त्वपूर्ण है कि महासभा ने उसे —'उन समस्त स्वतंत्रताओं की, जिनका संयुक्त राष्ट्र-संघ से वास्ता पड़ता है, कसौटी' के रूप में घोषित किया है। (प्रस्ताव ५९ I)।

ऊपर कई बार कहा जा चुका है कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह अकेला नहीं रह सकता। यदि उसे अकेला रहना पड़े या ऐसा करने के लिए उसे बाध्य किया जाय तो संसार में समाज जैसी कोई चीज नहीं रह जायगी। इसलिए अनुच्छेद २० में कहा गया है —"प्रत्येक व्यक्ति को सभा करने या समिति बनाने की स्वतन्त्रता का अधिकार है" लेकिन साथ ही यह भी कहा गया है कि किसीको भी संस्था का सदस्य वनने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता। इस अनुच्छेद में संस्था की व्याख्या भी कर दी गई है। उसका अर्थ है—"कोई भी संस्था, शाखा, राजनैतिक दल अथवा कोई भी पेशा-संगठन।" अनुच्छेद

२१ प्रत्येक व्यक्ति को समान रूप से अपने देश की केवल सरकारी नौकरियां ही प्राप्त करने का अधिकार नहीं देता. बल्कि समान मताधिकार के आधार पर सरकार बनाने और प्रत्यक्ष या स्वतन्त्र रूप से शासन में भाग लेने का अधिकार भी देता है। इसके अनुसार जनता की इच्छा ही सरकार की सत्ता का आधार है। राजा ईश्वर का अंश है या उसे किसी प्रकार के दैवी अधिकार प्राप्त हैं, यह पुरानी मान्यता इस परिच्छेद के अनुसार दफना दी गई है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सरकार चुनने का अधिकार है, इसलिए इस अनुच्छेद में यह भी कामना की गई है कि समय-समय पर सार्वलौकिक और समान मताधिकार के आधार पर मुक्त रूप से गुप्त चुनाव होने चाहिए। यह व्यवस्था ही प्रजातन्त्र अथवा गणतन्त्र प्रणाली की रक्षा कर सकती है।

आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक अधिकार

नागरिक तथा राजनैतिक स्वतंत्रताओं के उपभोग और आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों में परस्पर गहरा संबध है। वस्तुतः वे एक-दूसरे पर आश्रित हैं। इन्सान तबतक आजाद नहीं है जबतक उसे आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों से वंचित रखा जाता है (प्रस्ताव ४२७ V)। क्योंकि कोई भी व्यक्ति आर्थिक तथा सामाजिक सुरक्षा और न्यूनतम शिक्षा तथा सांस्कृतिक परिष्कार के बिना अपनी गरिमा अथवा आज़ादी कायम नहीं रख सकता। इसलिए २२वें अनुच्छेद में 'राष्ट्रीय प्रयत्न या अंतर्राष्ट्रीय सहयोग तथा प्रत्येक राज्य के संगठन एवं साधनों' के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति इन अधिकारों को प्राप्त कर सके, इस बात की व्यवस्था की गई है। समाज के एक सदस्य के रूप में प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा का अधिकार है। उसे उन आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक अधिकारों का हक है जो "उसके व्यक्तित्व के स्वतंत्र विकास व गौरव के लिए अनिवार्य है।"

प्रत्येक व्यक्ति को केवल काम पाने का ही नहीं, उचित और सुविधाजनक परिस्थितियों में अपनी इच्छानुसार धंधा करने का अधिकार भी आवश्यक है। काम करने के अधिकार का एक गुलाम या एक ऐसे आदमी के लिए भला क्या अर्थ हो सकता है, जिसे काम करने पर मजबूर किया जाय। यह अधिकार उपहास-मात्र है। इसी बात को अनुभव करके २३वें अनुच्छेद में प्रत्येक व्यक्ति को काम करने, अपनी इच्छानुसार काम-धंधा चुनने, समान कार्य के लिए बिना किसी भेद-भाव के समान रूप से उचित और गौरव के योग्य काफी मजदूरी पाने, अपने हितों की रक्षा के लिए श्रमजीवी-संघ बनाने और उसमें भाग लेने का पूरा अधिकार दिया गया है। यही नहीं, अनुच्छेद २४ में कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को विश्राम और अवकाश का अधिकार है। उसके काम के घंटों की उचित सीमा निश्चित होनी चाहिए और उसे समय-समय पर मजदूरी-सहित छुट्टियां भी मिलती रहनी चाहिए। अनुच्छेद २५ में प्रत्येक व्यक्ति और उसके परिवार के स्वास्थ्य और कल्याण के, रहन-सहन के उच्च स्तर और बेरोजगारी, बीमारी, अपंगुता, वैधव्य और वृद्धावस्था की दशा में सुरक्षा के अधिकार को मान्यता दी गई है।

इस प्रकार अनुच्छेद २३ से लेकर २५ तक का संबंध आर्थिक व सामाजिक अधिकारों से है। शिक्षा तथा सांस्कृतिक अधिकारों का निर्देश अनुच्छेद २६ और २७ में किया गया है। प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा पाने का अधिकार है, इसको तो आज लगभग सभी राष्ट्रों ने स्वीकार कर लिया है। सभी राज्य अपने समस्त नागरिकों को शिक्षा देना अपना कर्तव्य समझने लगे हैं। २६वें अनुच्छेद में इस बात की व्यवस्था के अतिरिक्त यह भी कहा गया है कि "माता-पिता को सबसे पहले इस बात का अधिकार है कि वे चुनाव कर सकें कि किस तरह की शिक्षा उनके बच्चों को दी जायगी।" यह व्यवस्था क्यों की गई, इसकी

चर्चा पिछले परिच्छेद में कर चुके हैं। इस अनुच्छेद में शिक्षा के विभिन्न स्तरों को और पद्धतियों को लिया गया है। प्रारम्भिक शिक्षा मुफ्त और अनिवार्य होनी चाहिए। प्राविधिक (तकनीकी) और पेशेवर शिक्षा धीरे-धीरे उपलब्ध की जानी चाहिए। उच्च शिक्षा भी सभी लोगों को योग्यता के आधार पर समान रूप से मिलनी चाहिए। शिक्षा के उद्देश्य के संबंध में जो वक्तव्य दिया गया है, वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। "शिक्षा का उद्देश्य होगा मानव के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास और मानव-अधिकारों और बुनियादी स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान की पुष्टि। शिक्षा द्वारा राष्ट्रों, जातियों अथवा धार्मिक समूहों के बीच आपसी सद्भावना, सहिष्णुता और मैत्री का विकास होगा और शांति बनाये रखने के लिए संयुक्त राष्ट्रों के प्रयत्नों को आगे बढ़ाया जायगा।"

अनुच्छेद २७ के अनुसार "प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रतापूर्वक समाज के सांस्कृतिक जीवन में हिस्सा लेने, कलाओं का आनंद उठाने तथा वैज्ञानिक उन्नति और उसकी सुविधाओं में भाग लेने का अधिकार है।" इस प्रकार संस्कृति, कला और विज्ञान अब चंद विशिष्ट लोगों की बपौती नहीं रह गई है। उनपर सभीका अधिकार स्वीकार कर लिया गया है। जनतंत्र का यही अर्थ है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक लेखक, कलाकार तथा अनुसंधानकर्त्ता के भौतिक और बौद्धिक हितों की सुरक्षा को भी मान्यता मिलनी चाहिए। समाज के वास्तविक निर्माता वे ही हैं। इसलिए इस अनुच्छेद में यह भी कहा गया है, "प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी ऐसी वैज्ञानिक, साहित्यिक या कलात्मक कृति से उत्पन्न नैतिक और आर्थिक हितों की रक्षा का अधिकार है जिसका रचयिता वह स्वयं हो।" यह उचित ही है।

अन्तिम तीन अनुच्छेद

अब केवल तीन अनुच्छेदों की चर्चा शेष रह जाती है।

इस बात को सभी स्वीकार करेंगे कि इस घोषणा में निहित अधिकारों और स्वतंत्रताओं का उपभोग ऐसे किसी भी देश में नहीं किया जा सकता, जहां भय और अत्याचार का बोल-बाला हो अथवा युद्ध की आग भड़क रही हो। उनका उपभोग केवल उसी सामाजिक अथवा अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था के अंतर्गत हो सकता है जो कानून या आपसी सम्मान पर आधारित हो। २८वें अनुच्छेद में इसी प्रकार की सामाजिक और अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था का अधिकार मान्य किया गया है।

जहां अधिकार का प्रश्न उठता है वहां कर्तव्य अपने-आप ही आ जाता है। एक ही वस्तु के ये दो पहलू हैं। इसलिए अधिकारों और स्वतत्रताओं की इस घोषणा में कर्तव्य की ओर भी ध्यान आकर्षित किया गया है। यह स्वाभाविक है और उचित भी। अनुच्छेद २९ में प्रत्येक व्यक्ति को उसके कर्तव्यों का स्मरण कराते हुए, उसके अधिकारों और दायित्वों की सीमा निर्धारित की गई है। यह चेतावनी भी दी गई है कि उसका उस समाज के प्रति कर्तव्य है जिसमें उसके व्यक्तित्व का स्वतत्र और पूर्ण विकास सभव है। अपने अधिकारों और दायित्वों का उपभोग करते हुए प्रत्येक व्यक्ति केवल ऐसी ही सीमाओ से बद्ध होगा जो कानून द्वारा निश्चित की गई है और जिनका एकमात्र उद्देश्य दूसरे के अधिकारों और स्वतंत्रताओं के लिए आदर और समुचित स्वीकृति की प्राप्ति होगा। इसके अतिरिक्त उनसे भी, जिनकी आवश्यकता एक प्रजातत्रात्मक समाज में नैतिकता, सार्वजनिक व्यवस्था और सामान्य कल्याण की उचित आवश्यकताओं को पूरी करना होगा। इस अनुच्छेद में यह व्यवस्था भी की गई है कि कोई भी व्यक्ति "इन अधिकारों और स्वतंत्रताओं का उपभोग किसी भी प्रकार से सयुक्त राष्ट्रों के सिद्धांतों व उद्देश्यों के विरुद्ध नहीं करेगा।"

अंत में अनुच्छेद ३० में चेतावनी दी गई है कि "इस घोषणा में बताई गई किसी भी बात का यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए

जिससे यह मालूम हो कि किसी भी राज्य-समूह या व्यक्ति को किसी ऐसे प्रयत्न में संलग्न होने या ऐसा काम करने का अधिकार है, जिसका उद्देश्य यहां बताये गए अधिकारों और स्वतंत्रताओं में से किसी का भी विनाश करना हो।"

उपसंहार

इस घोषणा-पत्र के सम्बन्ध में अक्सर यह पूछा गया है कि यह सार्वभौम घोषणा-पत्र नैतिक मानकों का विवरण है या कानूनी वक्तव्य। इस सवाल का उत्तर एकदम 'हां' अथवा 'ना' में देना बहुत कठिन है। साधारणतया इस बात पर सब सहमत हैं कि यह घोषणा-पत्र सामान्य सिद्धान्तों का लेखा है और सबसे अधिक नैतिक अधिकार-सत्ता से परिपूर्ण है। जैसाकि पहले कहा जा चुका है यह घोषणा निर्विरोध स्वीकार की गई थी किन्तु इसका मसविदा किसी सन्धि के रूप में तैयार नहीं किया गया था। इसलिए इसपर किसी राष्ट्र के हस्ताक्षर अथवा मान्यता की आवश्यकता नहीं है, और इसीलिए यह घोषणा किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय अथवा स्थानीय कानून के अंश के रूप में नहीं मानी जा सकती। फिर भी चूंकि यह घोषणा राष्ट्रों के समुदाय में सर्वोपरि अधिकार-सत्ता द्वारा स्वीकृत की गई है, इसलिए इसके पीछे वह नैतिक बल है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। प्रत्येक अधिकार और स्वतंत्रता के बारे में इस घोषणा में जो मानक रखे गये हैं, उन्हें यदि जन-साधारण और राज्य दोनों, नैतिक स्तर के रूप में स्वीकार करें तो शायद घोषणा में ऐसी अधिकार-सत्ता के दर्शन हो सकेंगे जो किसी भी सन्धि और कानून से कहीं ऊंची है।

कुछ लोगों का मत है कि घोषणा में कानूनी शक्ति का पूर्ण अभाव है। ऐसा नहीं कहा जा सकता। इसके विपरीत सयुक्त राष्ट्र-संघ का चार्टर वह सन्धि है जो कानूनी रूप से मान्य है। चार्टर के अन्तर्गत सभी सदस्य-राष्ट्र, "जाति, लिंग, भाषा अथवा

धर्म के आधार पर भेद-भाव के बिना सबके लिए मानव-अधिकारों और बुनियादी स्वतंत्रताओं के लिए मान्यता देने और सार्वभौम सम्मान को प्रोत्साहित करने के लिए अलग-अलग अथवा मिल कर कार्यवाही करने के लिए' वचनबद्ध हैं। (अनुच्छेद ५५ और ५६) पर चार्टर में मानव-अधिकारों की व्याख्या नहीं की गई है। सार्वभौम-घोषणा ही उसका अधिकृत अर्थ प्रकट करती है। इसलिए चार्टर के मानव-अधिकार-अनुबन्ध में सदस्य राष्ट्र जिस सीमा तक वचनबद्ध हैं, उसी सीमा तक इस घोषणा को मानने के लिए भी बाध्य हैं।

एक और भी तर्क है। इस घोषणा के अनेक अनुच्छेद राष्ट्रीय संविधानों और अधिकार- सम्बन्धी विधेयकों पर आधारित हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि सुसंस्कृत राष्ट्रों द्वारा मान्य कानून के सामान्य सिद्धान्तों में से अनेक सिद्धान्तों का समावेश इस घोषणा-पत्र में हुआ है।

तर्क का कोई अन्त नहीं है, लेकिन एक बात निर्विवाद रूप से स्वीकार की जा सकती है। वह यह है कि अब तक मानव-अधिकारों के सम्बन्ध में जितनी घोषणाएं हुई हैं उनमें यह घोषणा निश्चित रूप से सबसे अधिक व्यापक है। इतिहास में मानव-अधिकारों और बुनियादी स्वतंत्रताओं को इतने व्यापक रूप में सामने रखनेवाली यह प्रथम घोषणा है। इसीलिए इसे एक अन्तर्राष्ट्रीय मेग्ना कार्टा अथवा मानव-अधिकारों का एक अन्तर्राष्ट्रीय चार्टर कहा गया है। निस्सन्देह मानव के आदि अस्तित्व के टेढ़े-मेढ़े रास्ते से स्वतंत्र वातावरण तक पहुंचने में यह एक ऐतिहासिक मार्ग-चिह्न है—ऐसा मार्ग-चिह्न जिसपर आज का युग उचित गर्व कर सकता है।

: ६ :

प्रगति और प्रभाव

विश्व में शान्ति स्थापित करने के लिए सैकड़ों वर्षों से प्रयत्न होते चले आ रहे हैं, लेकिन उनका कोई विशेष परिणाम नहीं निकला। कारण कि सिद्धांत रूप में तो हमने शांति की आवश्यकता को स्वीकार किया, लेकिन उस सिद्धांत को अपने जीवन में लागू न कर सके।

मानव-अधिकारों के इस घोषणा-पत्र के साथ ऐसा नहीं हुआ। उसको स्वीकार करनेवाले व्यक्तियों ने इस बात को अच्छी तरह अनुभव कर लिया था कि यह घोषणा-पत्र संग्रहालय में सजाकर रखने की चीज नहीं है। इसीलिए इसे स्वीकार करने के बाद उन्होंने न केवल इसका प्रचार किया, अपितु इसपर अमल भी किया है।

सम्मति-पत्रों का मसविदा—

घोषणा-पत्र के बाद आयोग ने सम्मति-पत्रों के मसविदे की ओर ध्यान दिया। सम्मति-पत्र एक ही होना चाहिए या दो; अर्थात् १. नागरिक तथा राजनैतिक अधिकारों और २. आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों को एक ही पत्र में रखा जाय या अलग-अलग, इसपर काफी मतभेद था, किंतु; १९५१ में महासभा ने निश्चय किया कि दो सम्मति-पत्र होने चाहिए। यह कार्य १९५४ में पूरा हुआ और आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् ने दोनों सम्मति-पत्रों का मसविदा महासभा को भेज दिया। ये सम्मति-पत्र भाग लेनेवाले सभी राज्यों को कानूनी तौर पर मान्य होंगे।

इसके बाद आयोग ने अपने भविष्य की ओर ध्यान दिया।

१९५५ में उसने जो कार्यक्रम स्वीकार किया, उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—(१) सम्मति-पत्रों का लागू करना तथा राष्ट्रसंघ के तत्त्वावधान में की गई दूसरी अभिसंधियों द्वारा मानव-अधिकारों को बढ़ावा देना, (२) भेदभाव रोकना और अल्प-संख्यकों की सुरक्षा, (३) लोगों तथा राष्ट्रों के आत्म-निर्णय के अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्मान में अभिवृद्धि, (४) अंतर्राष्ट्रीय विकास तथा विश्वव्यापी स्तर पर मानव-अधिकारों के क्षेत्र में हुई प्रगति पर विचार, (५) विश्वव्यापी स्तर पर कुछ विशेष अधिकारों का आवश्यक सिफारिशों के साथ अध्ययन करना, (६) मानव-अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय घोषणा का अधिकाधिक प्रचार करना तथा इसके प्रभावों को आंकना, (७) मानव-अधिकारों की वार्षिक पुस्तक के स्वरूप व मजमून पर विचार, (८) मानव-अधिकारों-सम्बन्धी पत्र-व्यवहार का ध्यान रखना तथा उनके संबध में आंके हुए किसी सुझाव पर विचार करना ; तथा (९) पिछले राज्यों के सम्मेलन में अपूर्ण रह गया विषय व सामने आनेवाला और कोई नवीन विषय, जो पूरा न हो सका हो।

इस प्रकार आयोग जो अबतक मानव-अधिकारों की परिभाषा करने में लगा हुआ था अब उन्हें मूर्त रूप देने की ओर प्रयत्नशील हुआ। इस कार्यक्रम के तीन मुख्य रूप हैं (१) मानव-अधिकारों पर सरकारों द्वारा समय-समय पर रिपोर्ट, (२) कुछ विशेष अधिकारों का अध्ययन और (३) मानव-अधिकारों की सुरक्षा के लिए विभिन्न देशों के ज्ञान के व्यावहारिक अनुभवों का आदान-प्रदान।

१९५६ में मानव-अधिकार-आयोग की सिफारिशों के अनुसार आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् ने सदस्य-राष्ट्रों से हर तीन वर्षों के बाद रिपोर्ट देने को कहा। इनमें मानव-स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में हुई प्रगति तथा इस बारे में अपनाये गए तरीकों का ब्यौरा होता है। आयोग इनपर विचार करता है और

परिषद् को इनके बारे में टिप्पणियां, निष्कर्ष और सिफारिशें भेजता है।

आयोग संयुक्त राष्ट्र-संघ के सदस्य-राज्यों में कुछ विशेष अधिकारों का अध्ययन करता है। यह सामग्री वह इन साधनों से प्राप्त करता है : (१) सरकारें, (२) प्रधान सचिव, (३) विशेष संस्थाएं, (४) गैर-सरकारी संस्थाएं, जो आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् को परामर्श देती हैं, और (५) मान्यता-प्राप्त विद्वानों और वैज्ञानिकों की रचनाए। इसके लिए आयोग ने चार सदस्यों की एक समिति बना दी है। इस समिति ने अध्ययन के लिए जो विषय चुना है वह है—'बिना जांच-पड़ताल के व्यक्ति की गिरफ्तारी,नजरबन्दी तथा देश-निकाले से सुरक्षा का अधिकार।'

मानव-अधिकारों की वार्षिक पुस्तक हर वर्ष प्रकाशित होती है। इसमें न्यायालयों के निर्णय, अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों और समझौतों में वर्णित मानव-अधिकारों का निरूपण किया जाता है। सदस्य-राज्य, संरक्षित प्रदेश और ऐसे प्रदेश जहां स्वशासन नही है, अपने विवरण भेजते हैं। मानव-अधिकारों-सम्बन्धी संयुक्त राष्ट्र-संघ के अंगों के महत्त्वपूर्ण फैसलों को भी इसमें शामिल किया जाता है।

परामर्शदात्री सेवाएं—

सन् १९५५ में महासभा ने मानव-अधिकार-आयोग की सिफारशों पर आधारित 'मानव-अधिकारों के क्षेत्र में परामर्शदात्री सेवाए' पर एक प्रस्ताव स्वीकार किया। इसमें तीन प्रकार की सहायता का कार्यक्रम है : १. परार्शमदात्री सेवाएं, २. फैलोशिप तथा छात्रवृत्तियां, और ३. गोष्टियां। सरकारों की प्रार्थना पर किसी भी मानव-अधिकार के विषय पर ये सेवाएं उपलब्ध की जा सकती हैं। पर यह विषय ऐसा नहीं होना चाहिए, जिसके बारे में आजकल के प्राविधिक सहायता-कार्यक्रमों के अन्तर्गत अथवा किसी विशेष संस्था द्वारा पहले ही सहायता

दी जाती हो। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत जिनेवा, बैंकाक और सैंटीयागो (चिली) और फिलीपीन में समय-समय पर कई गोष्ठियां हो चुकी हैं। इन गोष्ठियों में मानव-अधिकार-सम्बन्धी ज्ञान के आदान-प्रदान, नागरिक जन-जीवन में एशियाई महिलाओं का भाग तथा फौजदारी कानून में मानव-अधिकारों की सुरक्षा आदि विषयों पर विचार किया गया। इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र-संघ के मुख्य कार्यालय में संगठन के कार्य का अध्ययन करने के लिए फैलोशिप भी दिये गए हैं।

भेद-भावों को रोकना तथा अल्प-संख्यकों की सुरक्षा—

इस विषय का अध्ययन करने के लिए एक उप-आयोग बनाया गया है। इस उप-आयोग ने जिन विषयों को अध्ययन के लिए चुना वे हैं: १. शिक्षा में भेद-भाव, २. रोजगार तथा पेशों में भेद-भाव, ३. धार्मिक अधिकारों तथा पद्धतियों से सम्बन्धित भेदभाव।

शिक्षा में भेद-भाव पर अध्ययन पूरा होगया है और उप-आयोग ने अपनी तजवीजें मानव-अधिकार-आयोग को भेज दी हैं। इन तजवीजों के सम्बन्ध में सरकारों से परामर्श किया जा रहा है।

सूचना की स्वतन्त्रता—

सन् १९४७ में सूचना तथा समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता पर बारह विशेषज्ञों का एक उप-आयाग बनाया गया था। सन् १९५२ में इसने अपनी सिफारिशें आर्थिक तथा समाजिक परिषद् को भेज दीं। महासभा ने इस आयोग के निर्णयों पर आधारित कई सिफारशें सरकारों को भेजी हैं। इस उप-आयोग ने दूसरे विषयों के साथ-साथ संवाददाताओं के लिए आचरण की नियमावली भी तैयार की। सन् १९५४ में परिषद् ने विदेशी संवाददाताओं की स्थिति, कापीराइट, समाचारपत्रों के दर और अन्तर्राष्ट्रीय

ब्राडकास्टिंग जैसे प्रश्नों पर भी प्रस्ताव स्वीकार किये। सूचना की स्वतन्त्रता पर समय-समय पर विचार होता रहता है और महासभा अपनी सिफारिशें सरकारों को भेजती रहती है।

मानव-अधिकारों-संबंधी अध्ययन तथा अभिसन्धियां

आर्थिक तथा समाजिक परिषद् समय-समय पर किसी जाति को जान-बूझकर समूल नष्ट करने, शरणार्थियों, राज्यविहीन व्यक्तियों, नारियों की स्थिति, बेगार और दासता जैसे प्रश्नों पर विचार करने के लिए विषय-समितियां बनाती रहती है।

सन् १९४८ में महासभा ने किसी जाति को समूल नष्ट करने की रोकथाम और सजा पर एक अभिसन्धि स्वीकार की। यह अभिसन्धि १२ जनवरी, १९५१ से लागू है। शरणार्थियों की स्थिति-सम्बन्धी अभिसन्धि १९५१ में स्वीकृत की गई थी, यह भी अब लागू है। इसके अनुसार शरणार्थियों को कुछ कानूनी अधिकार मिले हैं। विदेशियों के साथ जैसा व्यवहार किया जाता है, कम-से-कम वैसा व्यवहार उनके साथ भी हो, ऐसी इसमें व्यवस्था है। पासपोर्ट देने तथा देश-निकाले से बचाने का भी प्रबन्ध है।

राज्य-विहीन व्यक्तियों के सम्बन्ध में भी सितम्बर सन् १९५४ में एक अभिसन्धि स्वीकार की गई। यह शरणार्थी अभिसन्धि के समान ही है। इसी प्रकार बेगार खत्म करने के लिए सन् १९५७ में एक और अभिसन्धि स्वीकार की गई। सन् १९५७ में ही दासता के सम्बन्ध में एक अभिसन्धि स्वीकृत हुई। अभी भी क्रूरतापूर्ण दासता के अतिरिक्त इससे मिलती-जुलती कुछ प्रथाएं संसार के विभिन्न भागों में पाई जाती हैं। इस अभिसन्धि में ऐसी प्रथाओं को गैर-कानूनी करार दिया है, जैसे ऋण-बन्धन, दुलहन की कीमत, बालकों से बेगार लेना, आदि-आदि

नारियों की नागरिकता के सम्बन्ध में भी एक अभिसन्धि सन् १९५८ में स्वीकृत हुई। यह अभिसन्धि नारियों के लिए

मतदान का अधिकार, सार्वजनिक पदों को ग्रहण करने तथा पुरुषों के साथ बराबरी से भाग लेने के अधिकार को सुनिश्चित करती है।

जिस समय चार्टर पर हस्ताक्षर किये गए थे उस समय संसार के ८० सर्वप्रभुतासंपन्न राज्यों में से लगभग ४० में स्त्रियों को राजनैतिक अधिकार हासिल नहीं थे। हस्ताक्षर के बाद से ३५ देशों ने उनको राजनैतिक अधिकार प्रदान किये हैं। इसी प्रकार शिक्षा, आर्थिक अधिकार व अवसर तथा निजी कानून के क्षेत्र में स्त्रियों के बहुत-से अधिकार स्वीकार किये गए हैं। कुछ देशों में शादी हो जाने पर स्त्री का संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं रहता। आयोग के निर्णय पर आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् ने सदस्य-राज्यों को इस संबंध में कुछ सिफारिशें भेजी थीं। अल्प-विकसित क्षेत्रों में पाई जानेवाली कुछ कुरीतियों पर, जैसे बाल-विवाह, दुलहिन की कीमत तथा पति-परिवार का विधवाओं पर अधिकार, महासभा ने एक प्रस्ताव स्वीकार किया है और तमाम राज्यों को इन कुरीतियों को खत्म करने का सुझाव दिया है। शादीशुदा नारियों की नागरिकता के संबंध में भी महासभा ने जनवरी सन् १९५७ में एक अभिसंधि स्वीकार की। ११ अगस्त, १९५८ से यह लागू हो चुकी है। इसके अनुसार एक विदेशी से विवाह करने पर पत्नी की नागरिकता पर स्वभावतः असर नहीं पड़ेगा।

विभिन्न आयोग और संस्थाएं

मानव-अधिकारों से संबंधित विभिन्न समस्याओं को लेकर समय-समय पर आयोगों, समितियों व संगठनों की स्थापना होती रहती है। सन् ४६ में नारी की समस्याओं के लिए, सन् ५० में युद्ध-बंदियों की समस्याओं के संबध में तथा सन् ५२ में दक्षिण अफ्रीका संघ में जाति-भेद की स्थिति का अध्ययन करने के लिए ऐसे ही आयोग स्थापित किये गए। अंतिम आयोग की

रिपोर्ट पर महासभा ने दक्षिण अफ्रीका में जाति-भेद की स्थिति पर अनेक सिफारिशें कीं। अभी तक इस प्रश्न को लेकर संघर्ष हो रहा है।

अंतर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन श्रमिकों की सुरक्षा और अधिकारों के बारे में विशेष दिलचस्पी लेता है। सार्वभौम घोषणा के २६ और २७वें अनुच्छेद में उल्लिखित शिक्षा-संबंधी और सांस्कृतिक अधिकार संयुक्त-राष्ट्र-शिक्षा-विज्ञान-संस्कृति-संगठन (यूनेस्को) के कार्यक्रम के मुख्य विषय हैं। यह संगठन भेद-भावों को दूर करने और घोषणा में निर्दिष्ट अधिकारों और विभिन्नताओं के बारे में शिक्षा को बढ़ावा देने में क्रियाशील है। विश्व-स्वास्थ्य-संघ का उद्देश्य स्वास्थ्य के उत्तम स्तर के उपभोग के अधिकार को बढ़ावा देना है। विश्व-डाक-संघ ने राष्ट्रों के बीच डाक-संचार की स्वतंत्रता के सिद्धांत की घोषणा की है और अंतर्राष्ट्रीय दूर-संचार सघ अंतर्राष्ट्रीय पत्र-व्यवहार की गोपनीयता को सुरक्षित रखने का प्रयत्न करता है।

मानव-अधिकार-दिवस

१० दिसंबर, १९४८ को संयुक्त राष्ट्र-संघ ने मानव-अधिकारों की सार्वभौम घोषणा को स्वीकार किया था। ४ दिसंबर, १९५० को महासभा ने प्रस्ताव पास किया कि प्रतिवर्ष १० दिसबर को मानव-अधिकार-दिवस मनाया जाय और प्रगति के लिए अधिक प्रयास किया जाय। तभी से १० दिसंबर संसार के अनेक भागों में मानव-अधिकार-दिवस के रूप में मनाया जा रहा है।

प्रभाव

सन् १९४८ में इस सार्वभौम घोषणा के स्वीकार होने से अबतक संसार पर इसका जिस प्रकार और जितना प्रभाव पड़ा है, उसका ठीक-ठीक अनुमान लगाना बहुत कठिन है। फिर भी, हम उसकी एक झलक देने का प्रयत्न करेंगे।

स्वयं संयुक्त राष्ट्र के प्रस्तावों व सिफारिशों में इस सार्वभौम घोषणा अथवा इसके अलग-अलग अनुच्छेदों को सफलता के माप के रूप में अक्सर उद्धृत किया गया है। आर्थिक व सामाजिक परिषद् ने 'निजी-कानून में नारी का स्थान'-संबंधी कई प्रस्ताव स्वीकार किये हैं। इनमें अनुच्छेद १६ का हवाला दिया गया है और सरकारों से प्रार्थना की गई है कि वे पति व पत्नी के पारिवारिक मामलों में समान अधिकारों व दायित्वों को सुनिश्चित करने के लिए समस्त संभावित कदम उठायें।

अन्तर्राष्ट्रीय अभिसंधियां—

यद्यपि यह घोषणा एक अंतर्राष्ट्रीय कानूनी साधन नहीं है, फिर भी संयुक्त राष्ट्र अथवा अंतर्राष्ट्रीय श्रमिक-संगठन के तत्त्वावधान में होनेवाले अनेक अंतर्राष्ट्रीय अभिसंधियों में इसकी मिसाल दी गई है। पीछे हमने जिन अभिसंधियों की चर्चा की है उन सभीमें इस घोषणा का हवाला दिया गया है। शरणार्थियों तथा राज्य-विहीन लोगों से सबंधित अभिसंधियों की प्रस्तावना में पहला वाक्यांश इस प्रकार है "यह विचार करते हुए कि १० दिसवर १९४८ को संयुक्त राष्ट्रीय चार्टर की मानव-अधिकारों की सार्वभौम घोषणा ने इस सिद्धांत को फिर से दोहराया है कि मानव किसी भेदभाव के बिना आधारभूत अधिकारों व स्वतंत्रताओं का उपभोग करेगा।"

संधियां और घोषणाएं—

विभिन्न प्रदेशों ने अपनी संधियों व घोषणाओं में इस सार्वभौम घोषणा अथवा उसके अनुच्छेदों का हवाला दिया है। इनमें प्रमुख हैं(१) यूरोपीय कन्वेंशन, रोम, १९५०; (२) अमेरिकी राज्यों का दशम अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन, काराकस, १९५४; (३) एशियाई-अफ्रीकी-सम्मेलन, बांडुंग १९५५; (४) जापानी शान्ति-सन्धि, सानफ्रांसिसको, १९५१; (५) ट्राइस्ट प्रदेश-सम्बन्धी सम-

झौता, १९५४, और (६) फ्रेंको ट्यूनीशियन कन्वेंशन, १९५५।

इन सभी संधियों और घोषणाओं में सार्वभौम घोषणा के अनुसार मानव-अधिकारों के मूलभूत सिद्धान्तों के प्रति पूर्ण सहयोग की प्रतिज्ञा की गई है।

राज्यों के संविधान और कानून

इस घोषणा के स्वीकार होने के बाद अनेक नये राष्ट्रीय संविधान लागू हुए हैं, जिनमें इस घोषणा के मसविदे से सहायता ली गई है। इधर जो कानून या आदेश जारी किये गए हैं, उनमें कभी-कभी इस घोषणा अथवा इसके किसी अनुच्छेद का उदाहरण दिया गया है। १९४९, में लागू किये गए जर्मन-संघीय गणतंत्र के आधारभूत कानून, १९५० में घोषित हैती के संविधान और इंडोनेशिया के अस्थायी संविधान, लीबिया के संविधान (१९५१) और इरीट्रिया के संविधान (१९५२) पर भी इस घोषणा का काफी प्रभाव पड़ा है।

टोगोलैंड नियम के पहले अनुच्छेद (२२, फरवरी १९५८ के आदेश) के अनुसार फ्रांसीसी प्रशासन के अंतर्गत टोगोलैंड का संरक्षित प्रदेश "अंतर्राष्ट्रीय संधियों व कन्वेंशनों, मानव-अधिकारों की सार्वभौम घोषणा में निर्दिष्ट सिद्धांतों व फ्रांसीसी गणतंत्र के संविधान की प्रस्तावना में उल्लिखित बातों के प्रति सम्मान के आधार पर एक गणतंत्र होगा।"

पैरागुए, ओंटोरिया (कनाडा), अर्जेन्टाइना, बोलीविया और पनामा की सरकारों ने सार्वभौम घोषणा के बाद कई ऐसे कानून बनाये हैं जिनमें इस घोषणा का या अलग-अलग अनुच्छेदों का हवाला दिया गया है। पनामा सरकार के एक कानून की प्रस्तावना कहती है, "रंग अथवा जाति की वजह से किसी भी प्रकार का भेद-भाव राष्ट्रीय संविधान के २१वें अनच्छेद व संयुक्तराष्ट्र महासभा द्वारा १० दिसंबर १९४८ को स्वीकृत मानव-अधिकारों की सार्वभौम घोषणा का उन्मुक्त उल्लंघन है।"

न्याय-संबंधी निर्णय व सम्मतियां

इस सार्वभौम घोषणा अथवा इसके अलग-अलग अनुच्छेदों का अनेक न्याय-सम्बन्धी निर्णयों व सम्मतियों में उल्लेख किया गया है। किसी राष्ट्र का न्यायालय अपने घरेलू मामलों में एक अंतर्राष्ट्रीय घोषणा का हवाला दे, ऐसा बहुत कम होता है। उदाहरण के लिए, यहां हम कुछ ऐसे रोचक निर्णयों का उल्लेख करेंगे।

कोरट्राय, बेल्जियम में एक महिला को उसकी माता के इच्छा के विरुद्ध उसके पिता की प्रार्थना पर एक पागलखाने में रखा गया था। उस महिला की दिमागी हालत पर विशेषज्ञ की राय प्राप्त करने के बाद अदालत ने १० जून, १९५४ को उसे फौरन रिहा करने का आदेश दिया। अदालत ने अपने फैसले में सार्वभौम घोषणा के अनुच्छेद ३ का उल्लेख किया है जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को जीवन, स्वाधीनता और वैयक्तिक सुरक्षा का अधिकार है।

प्रेस की स्वतंत्रता से संबंधित एक मामले में नीदरलैंड्स के सुप्रीम कोर्ट में (१९५१) वादी पब्लिक प्रासीक्यूटर ने कहा कि संवैधानिक अधिकार, जिसमें प्रेस की स्वतंत्रता भी शामिल है, अब अखंडित अधिकार नहीं रह गये हैं; क्योंकि आधुनिक प्रवृत्ति उन अधिकारों को सार्वजनिक हितों की सीमाओं में रखने की है। इसपर न्यायालय ने निर्णय दिया कि संविधान अधिकार को कमजोर करने की तथाकथित प्रवृति संयुक्तराष्ट्र महासभा द्वारा १० दिसंबर, १९४८ को स्वीकृत मानव-अधिकारों की सार्वभौम घोषणा द्वारा अस्वीकृत की गई है।

न्यूजीलैंड में एक मावरी जाति की महिला के मकान में एक गोरा किरायेदार रहता था। महिला ने अपने रहने के लिए मकान खाली कराने की दृष्टि से किरायेदार को नोटिस दिया। न्यूजीलैंड के कानून के अनुसार किरायेदार का यह सिद्ध कर

देना उसके हक में काफी था कि मकान खाली न करने पर मकान-मालिक को जो तकलीफ होगी, उससे कहीं अधिक कष्ट और परेशानी उसे मकान खाली करने पर होगी। लेकिन मकान-मालिक व किरायेदार दोनों गोरे होते तो यह प्रश्न न उठता, किन्तु अब गोरे किरायेदार ने यह आपत्ति पेश की कि यदि वह मकान खाली करता है तो उसे बड़ी कठिनाई होगी, जबकि महिला मकान-मालिक को, जहां वह रहती है, वहीं रहने में इतनी असुविधा नहीं होगी क्योंकि वह मावरी (अश्वेत) जाति की है। अदालत ने फैसला दिया कि क्योंकि यह दलील जातिगत भेद-भाव पर दी गई है, इसलिए अमान्य है और उसने गोरे किरायेदार को छः हफ़्ते के भीतर मकान खाली करने का आदेश दिया।[1] इस फैसले में घोषणा के सातवें अनुच्छेद की झलक मिलती है।

सोवियत रूस में पहले वहां के नागरिकों को विदेशियों के साथ विवाह करने की मनाही थी, किंतु २६ नवम्बर, १९५३ को सोवियत संघ के समाजवादी गणतंत्र ने १५ फरवरी १९४७ के इस कानून को रद्द कर दिया और १९ अगस्त १९३८ के नागरिकता अधिनियम के पांचवें अनुच्छेद को फिर से लागू कर दिया। इसमें कहा गया है कि यदि सोवियत संघ का कोई नागरिक किसी विदेशी नागरिक से विवाह करता है तो उसकी नागरिकता में कोई नहीं अंतर आयेगा।[2]

ऐसे अनेक उदाहरण हैं और ये इस बात के साक्षी हैं कि समस्त लोगों व समस्त राष्ट्रों के लिए सफलता के सामान्य मार्ग के रूप में, बारह वर्ष पहले घोषित इस घोषणा ने संयुक्त राष्ट्र संघ व अलग-अलग सरकारों की गतिविधियों पर काफी प्रभाव डाला है। इसमें कोई संदेह नहीं कि भविष्य में भी लोग इसी

---

[1] १९५० की वार्षिक पुस्तक, पृष्ठ २०४, सुप्रीम कोर्ट, न्यूज़ीलैंड।

[2] १९५३ की वार्षिक पुस्तक, पृष्ठ २८०, सुप्रीम कोर्ट, न्यूजीलैंड।

तरह इस घोषणा-पत्र से प्रेरणा प्राप्त करते रहेंगे। यह घोषणा एक महान् व प्रेरणादायक दस्तावेज़ है, किंतु मानव-अधिकारों के बारे में अंतिम शब्द किसी भी तरह नहीं है। जैसे-जैसे मानव प्रगति करता जायगा, वह अधिक स्वतंत्रता, अधिक नवीन विचारों और अधिक समृद्धिशाली जीवन के नये-नये क्षितिजों की खोज करता रहेगा—ऐसे क्षितिज, जिनकी आज हम शायद कल्पना भी नहीं कर सकते।

भविष्य के आंचल में चाहे कुछ भी हो, मानव-अधिकारों की यह सार्वभौम घोषणा वर्तमान युग के नर-नारियों की सर्वोत्तम आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करती है। शांति और समृद्धि के लिए यह एक चुनौती है। इस चुनौती का सामना करने के लिए समस्त राष्ट्रों के समस्त लोगों का प्रयत्न करना आवश्यक है।

. ७ .

उपसंहार

बहुत पुरानी बात है, कहीं एक बुद्धिमान राजा था। उसकी इच्छा हुई कि मैं अपनी प्रजा के लिए कुछ नियम बना दूं। उसने एक हजार भिन्न-भिन्न जातियों में से एक हजार विद्वान् व्यक्ति चुनकर बुलाये और उनकी सलाह से नियम बनाये गए।

एक दिन जब वे हजार कानूनी नियम राजा के सामने रखे गये और उसने उन्हें पढ़ा तो उसका हृदय रो पड़ा। उसने कभी सोचा भी न था कि उसके राज्य में हजार प्रकार के अपराध प्रचलित हैं। तब उसने अपने अहलकार को बुलाया और मुस्कराते हुए स्वयं कुछ कानूनी नियम लिखवा दिये। वे गिनती में केवल सात थे।

वे विद्वान लोग नाराज होकर अपने-अपने देश लौट गये और उनके बनाये हुए कानून उनकी जातियों में चलने लगे। परिणामस्वरूप आज भी हजारों कानून प्रचलित हैं। आज भी हजारों बंदीगृह हैं और उनमें कानून तोड़नेवाले हजारों स्त्री-पुरुष भरे पड़े हैं।

खलील जिब्रान की इस कहानी का अर्थ स्पष्ट है कि विधि-विधानों की बहुलता समस्या को और भी उलझा देती है। क्या ही अच्छा होता कि इतने 'अधिकारों' के स्थान पर हम एक अधिकार पर सहमत हो पाते। गांधीजी ने कहा था, "कर्त्तव्य के अतिरिक्त मैं किसी और अधिकार की बात नहीं जानता।"

'कर्त्तव्य' ही एक अधिकार है। कहा जा सकता है कि यह एक हवाई आदर्श है,. परंतु जब हम व्यक्ति को समाज के अंग के रूप में देखते हैं तो फिर कुछ समझने को शेष नहीं रहता।

हमारा लक्ष्य क्या है ? क्या हमें केवल अपनी ही फिक्र करनी चाहिए या समाज, देश और मनुष्य जाति की भलाई की चिंता करनी चाहिए। मानना होगा कि सार्वजनिक हित में ही हमारी भलाई छिपी हुई है। 'पंचतंत्र' में एक श्लोक आता है—

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे, ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे, आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्॥

कुल के लिए व्यक्ति को, समाज के लिए कुल को, देश के लिए समाज को और आत्मा के लिए सारी दुनिया को छोड़ देना चाहिए। आत्मा का अर्थ अपने-अपने खयाल के अनुसार अलग-अलग हो सकता है, लेकिन यहां इसका अर्थ यही है कि मनुष्य को सहयोग और सार्वजनिक हित के लिए अपने स्वार्थ का बलिदान कर देना चाहिए। जब भागवतकार यह कहता है—"मुझे न तो स्वर्ग की इच्छा है, न जन्म और मृत्यु से छुटकारा पाकर मोक्ष पाने की ही कामना है, मेरी इच्छा तो यह है कि दुखी जनों के दिलों में पैठ जाऊं और उनका दुःख-दर्द अपने ऊपर ले लूं जिससे वे पीड़ा से मुक्त हो जायं।"—तो वह अपने 'मैं' को इसी सार्वजनिक रूप में देखना चाहता है। जब हम कर्त्तव्य और त्याग की बात करते हैं तो 'मै' के अतिरिक्त किसी 'दूसरे' का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। यहीं समाज का जन्म होता है। महाभारत में लिखा है—'यह सारा मृत्युलोक एक परस्पर आश्रित संगठन है।' ऐसे संगठन में व्यक्ति केवल अपनी ही बात नहीं कर सकता। इसीलिए वेद का आदेश है कि अगर हम चाहते हैं कि सारी दुनिया हमारी ओर मित्र की निगाह से देखे तो हम भी सारी दुनिया को मित्र की निगाह से देखें।

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे॥

गीता ने इस बात को और भी स्पष्ट किया है। उसने प्राणिमात्र को सम-भाव से देखने की बात कही है।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥

अर्थात् ज्ञानी-जन विद्या और विनय-युक्त ब्राह्मण में तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल में भी सम-भाव से देखनेवाले होते हैं।

इसी सम-भाव को वेदांत कहते हैं। जो मनुष्य सर्वत्र परमेश्वर के अस्तित्व को समान रूप से देखता है वह वेदांत को समझता है। विनोबा के अनुसार यही वेदांत संसार का भावी धर्म है।

एक दिन शंकराचार्य गंगा-तट पर जा रहे थे। राह में उन्हें एक चाण्डाल मिला। शंकर ने यह देखकर पुकारा "अरे दूर हट, दूर हट।" लो, चाण्डाल हटना तो दूर, खिलखिला पड़ा, बोला, "आप तो मानते हैं कि ब्रह्म और जीव एक है। तब आप किसे दूर हटा रहे हैं। सूरज का प्रकाश सबपर एकसा पड़ता है। 'मैं ब्राह्मण हूं और तू चाण्डाल, तू दूर हट,' यह झूठा आदेश है। सब शरीरों में एक समान रहनेवाले भगवान को आप भूल रहे हैं।"

यह सुनकर शंकर की आंखें खुल गईं। उन्होंने उस चाण्डाल को अपना गुरु माना, क्योंकि वह मानता था, जो चेतनता विष्णु शिव आदि देवताओं में है वही कीड़े, मकोड़े आदि छोटे जीवों में भी है। सबको आपस में प्रेम करना चाहिए। जब सबमें एक ही ज्योति है तो किसका आदर और किसका अनादर? हम और हमारे पडोसी एक ही हैं। पडोसी की सहायता अपनी सहायता है। स्वार्थ और परमार्थ में कोई अंतर नहीं।

वेदांत की इस व्याख्या को समझे बिना मानव-अधिकारों की सार्वभौम घोषणा को मूर्त रूप नहीं दिया जा सकता। अशोक ने इसे समझा था तभी उसने आदेश दे रखा था—"सब समय और सब तरह, चाहे मैं खाना खाता हूं, चाहे रनवास में

हूं, चाहे अपने शयन में रहूं या स्नान में, सवारी पर रहूं या महल के बाग में, सरकारी कर्मचारी जनता के कार्यों के बारे में मुझे बराबर सूचना देते रहें। जिस समय भी हो, जहां भी हो, मैं लोक-हित के काम करूंगा।"

भारत के गणतंत्र और प्राचीन ग्राम-पंचायतें सभी इस विचार से अनुप्राणित थे। हमारा वर्तमान विधान भी इसी सार्वभौम सहिष्णुता के आधार पर बनाया गया है। उसका उद्देश्य अपने नागरिकों के लिए इन बातों को सुरक्षित करना है—सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार-अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्राप्त करना और इन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करनेवाली बन्धुता बढ़ाना।

इसके बाद भेदभाव का कोई प्रश्न ही नहीं रह जाता। इसीलिए अस्पृश्यता, चाहे किसी भी रूप में हो, कानून के समक्ष एक अपराध है। मानव-अधिकारों की सार्वभौम घोषणा में कहा गया है कि सभी मानव स्वतंत्र और समान हैं। डाक्टर अम्बेडकर भारतीय संविधान के प्रमुख निर्माता थे। परन्तु जन्म से वह अछूत थे। फिर भी वह आधुनिक मनु बन सके। क्या यह इस बात का ज्वलन्त प्रमाण नहीं है कि भारत में नई चेतना कितनी तेजी से विकसित हो रही है।

इसी प्रकार आज के भारत में नारी किसी भी दृष्टि से पुरुष से पीछे नहीं है। सार्वजनिक जीवन के अनेक गौरवपूर्ण पदों पर वह काम कर रही है। विजयलक्ष्मी पंडित तो स्वयं संयुक्त राष्ट्र की अध्यक्षा बन चुकी है। सार्वभौम घोषणा में धर्म और विचार की जिस स्वतंत्रता की चर्चा की गई है, हमारे संविधान में उसका पूरा समावेश हुआ है। सम्राट् अशोक के धर्म-चक्र को हमने अपना प्रतीक बनाया है। वह सहिष्णुता का प्रतीक है। हमारा राज्य सेक्युलर स्टेट है। इस अंग्रेजी शब्द से कई बार भ्रम पैदा हो जाता है। इसका अर्थ धर्महीनता नहीं, बल्कि सब धर्मों

को समान भाव से देखना है। जिस वेदांत की हमने ऊपर चर्चा की है, वह यही है और इसीलिए विनोबा ने भारत सरकार को वेदांती सरकार कहा है। स्वयं विनोबा भी मानव-अधिकार की

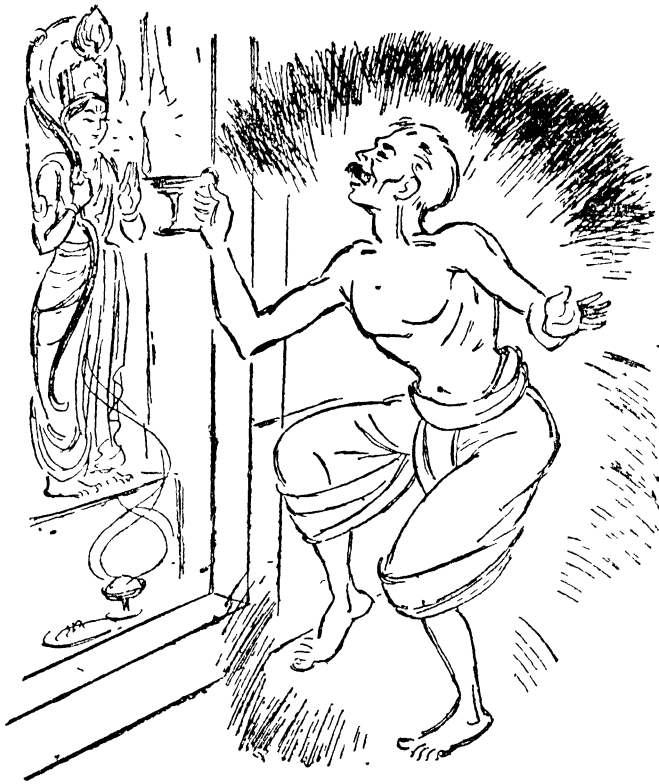

मन्दिर में आरती करता हुआ अछूत

रक्षा के लिए भूदान-आन्दोलन का संचालन कर रहे हैं। उसका मूल उद्देश्य धरती पर सभी मानवों के समान अधिकार को स्थापित करना है।

स्वाधीनता-संग्राम की अमर वीरांगना झांसी की रानी लक्ष्मीबाई

युद्ध से त्रस्त आज के संसार में शांति की पुकार मची हुई है, उसको चरितार्थ करने के लिए हमारे प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने पंचशील का मार्ग सुझाया है। पंचशील अर्थात् शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व, अर्थात् दूसरे का सम्मान, दूसरे के अधिकारों का सम्मान आवश्यक है। किसीको हीन बनाकर समानता की कल्पना नहीं की जा सकती। आज विश्व दो विरोधी गुटों में बटा हुआ है। किंतु दोनों को अपने-अपने विनाश का डर है, क्योंकि दोनों ने विज्ञान के क्षेत्र में असीम प्रगति कर ली है। पर विज्ञान की संहारक शक्ति न किसी क्षेत्र-विशेष तक सीमित रह सकती है, न राष्ट्र-विशेष तक। एटम बम और हाईड्रोजन बम आज इतनी संख्या में मौजूद हैं कि उनका उपयोग कोई भी विजय के लिए नहीं कर सकता। यह केवल पराजय, समस्त मानवता की पराजय, के प्रतीक बन गये हैं। और यही भय का कारण है। लेकिन क्या यह सत्य नहीं है कि इस भय ने, जिसे हम 'समान भय' कह सकते हैं, 'समान साधना' को जन्म दिया है। इसने पूर्व और पश्चिम, काले और गोरे सबको पास ला दिया है। आज की दुनिया जितनी एक है, जितनी सहयोग की भूखी है, उतनी पहले कभी न थी। आज का वैज्ञानिक भी अपने सामाजिक दायित्व के प्रति सजग है। आइन्सटाइन ने किसीसे कहा था, "तीसरा महायुद्ध किन हथियारों से लड़ा जायगा, यह तो मुझे नहीं मालूम, परंतु चौथा महायुद्ध होने की नौबत आई तो धनुषबाण से लड़ा जायगा।"

इन शब्दों में विज्ञान के दुरुपयोग के भयानक परिणाम की ओर संकेत है।

औद्योगिक क्रांति, परिवहन और संचार के साधन और अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्य इन सभीने मिलकर एक दुनिया का निर्माण करने में योग दिया है। इसके अतिरिक्त अनेक सामाजिक और आर्थिक अंतर्राष्टीय आंदोलन तथा विज्ञान के कारण निकट

भविष्य में 'अंतरिक्ष-यात्रा' की संभावना, इन सबने भी हमारी दुनिया को एक बनाने का प्रयत्न किया है। लेकिन इससे हमारे दिल एक नहीं हो सके थे। दिलों को एक करने का काम 'समान भय' कर रहा है। मानवता की पराजय का भय कर रहा है।

'समान भय' के कारण शांति की जो पुकार उठी है, वह परस्पर के मेल के बिना चरितार्थ नहीं हो सकती। शांति का अर्थ ही है परस्पर मेल और सद्भावना। आज हम विरोधी आदर्श और संस्कृतिवाले एक-दूसरे को जानने और समझने के लिए आतुर हैं, लेकिन दूसरे को तभी समझा जा सकता है जब हम संकुचित मनोवृत्ति को छोड़ें। अपनी श्रेष्ठता को भूलें और दूसरे के दृष्टिकोण को समझें। पंचशील का यही उद्देश्य है और आरंभ में हमने जिस भारतीय वेदांत की चर्चा की है, वह भी यही है, और इसीको मानव-अधिकारों की सार्वभौम घोषणा में प्राप्त करने की चेष्टा की गई है।

विज्ञान के इस युग में 'भावना' और 'आदर्श' का कोई बहुत मूल्य नहीं माना जाता। लेकिन यदि विज्ञान हमें इतना भौतिकवादी बना देता है कि हम मानवता के उच्छ्वासों का, और मानवता ही क्या, फूल-पत्तियों के उच्छ्वासों का स्पंदन अपने हृदय में न सुन सकें तो आइन्स्टाइन के उस फार्मूले का अध्ययन बेकार है जो संहति और ऊर्जा (मैटर और एनर्जी) के पारस्परिक रूपांतरण की स्थिति के द्वारा अतींद्रिय प्राण-लोक की संभावना से साक्षात्कार कराता है।

तो यह है दुनिया, जिसके हम स्वामी बनाना चाहते हैं। यह है संसार जिसमें प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक सरकार को ही नहीं, बल्कि सामूहिक रूप से सबको नया रास्ता खोजना है। हमारी समस्या है कि मानव ने मानव के लाभ के लिए जो बनाया है, उसका विनाश के बजाय और कैसे इस्तेमाल करें। इसीका मार्ग मानव-अधिकारों की विश्व-व्यापी घोषणा में सुझाया गया है। संभवतः

मानव-इतिहास में पहली बार संसार के इतने राज्यों के प्रतिनिधियों ने एकत्रित होकर इस बात पर सहमति प्रकट की है कि कुछ अधिकार ऐसे हैं जो किसी एक राष्ट्र या दल की बपौती नहीं हैं, बल्कि मानव के रूप में मानवमात्र का उनपर अधिकार है। संयुक्तराष्ट्र संघ ने इस बात की घोषणा की है कि लोगों को यह अधिकार इसलिए प्राप्त नहीं हुए कि वे अंग्रेज हैं या अरब, ईसाई हैं या बौद्ध, एस्कीमों हैं या दक्षिणी समुद्र के द्वीपों के रहनेवाले, बल्कि इसलिए हुए हैं कि वे मानव हैं। सार्वभौम घोषणा वस्तुतः इस बात की घोषणा करती है कि प्रत्येक व्यक्ति को पूरी तरह और पूरे सुख के साथ जीने का अवसर मिलना चाहिए।

तब क्या आज की स्थिति में प्रत्येक प्राणी का यह कर्तव्य नहीं हो जाता कि मानव-अधिकारों की इस सार्वभौम घोषणा को अधिक प्रचारित करने और व्यावहारिक रूप देने में योग दे? इस घोषणा का अच्छी तरह अध्ययन करें और अपने देश में प्रचलित विधि-विधानों और रीति-रस्मों से इसकी तुलना करें। फिर सोचें कि इस घोषणा के लिए कौन-से परिवर्तन करने की आवश्यकता है। स्वयं भी आत्म-निरीक्षण करें और अपने से यह प्रश्न पूछें कि क्या हम अपने कुटुम्बीजनों को, अपनी जाति और उन लोगों को, जिनके साथ हम काम करते हैं, ये अधिकार दे रहे हैं। ऐसा करके हम दूसरों के लिए उदाहरण प्रस्तुत करेंगे। सिद्धान्त में तो बहुत-सी बातें हमने स्वीकार की हैं, लेकिन जब-तक उनको व्यवहार में परिवर्तित नहीं करेंगे तबतक वे सिद्धान्त, चाहे कितने भी ऊंचे क्यों न हों, निकम्मे ही साबित होंगे। क्या हम अपने सिद्धान्तों को निकम्मा साबित होने देंगे? यह एक चुनौती है। विनाश की जो ताकतें आज सारे संसार को भय से त्रस्त कर रही हैं वे ही उसे अनान्द और उमंग से भर सकती हैं। जो विज्ञान महानाश का प्रतीक है वही महानिर्माण और अनन्त सुख का भण्डार भी है। लेकिन हमें यह समझना आवश्यक है

कि उसके पास गति है, दिशा नहीं। दिशा मनुष्य के हाथ में है, अर्थात् हमारे हाथ में है। मानव-अधिकारों की सार्वभौम घोषणा में उसी दिशा का संकेत है। उसी दिशा को समझना हमारा कर्त्तव्य है और अधिकार भी।

○

'मंडल' के ये प्रकाशन

१. ग्रामोद्योग

भारतीय लोक-जीवन तथा अर्थ-व्यवस्था में ग्रामोद्योगों के महत्व का बोध करानेवाली पुस्तक.

२. नये जीवन की ओर

बाल तथा नारी-कल्याण के लिए होनेवाले कार्यों का बड़ी सरस तथा सुन्दर शैली में सिंहावलोकन.

३. सहकारी समाज

सहकारिता के आरंभ, विकास, मौजूदा हालत तथा भावी संभावनाओं पर प्रकाश.

४. धान की खेती

धान के उत्पादन को बढ़ाने के लिए उत्तम भूमि, खाद तथा जापानी पद्धति से खेती करने की विधि आदि की विस्तृत जानकारी.

५. मानव-अधिकार

मानव-अधिकारों के संघर्ष की कहानी.

अखिल भारतीय मंडल

एक रुपया